अंतिम क्षण

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के मैथिली उपन्यास ‘अन्तिम क्षण’ का हिंदी अनुवाद)

अन्तिम क्षण

मैथिली उपन्यास

जगदीश प्रसाद मण्डल

अन्तिम क्षण

हिंदी अनुवाद

गोसाँइ मंडल

अंतिम क्षण

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिंदी अनुवाद

गोसाँइ मंडल

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

ANTIM KSHAN

Hindi Translation of the Maithili Novel Antim Kshan

Original Author: Shri Jagdish Prasad Mandal

Hindi Translation: Gosain Mandal

The Final Moment is a deeply reflective work that explores the intimate space where life and memory converge. The narrative unfolds with quiet restraint, drawing the reader into the inner world of characters poised at the fragile threshold between lived experience and unresolved emotion. Rather than presenting death as a conclusion, the novel treats it as a moment of heightened clarity, where human experience becomes sharper, more honest, and more luminous.

The story develops through subtle emotional shifts. Ordinary days take on unexpected depth as the weight of responsibility, the silence of unspoken bonds, and the ache of separation surface with renewed intensity. Each character uncovers an inner truth long concealed beneath the rhythms of daily life. Through these revelations, the novel portrays the quiet dignity of acceptance and the understated courage that often emerges in life's final moments.

The language of the translation preserves the calm gravity of the original. It's measured pace encourages contemplation to unfold organically. The Final Moment gently reminds the reader that the end of life can also mark the beginning of deeper understanding, compassion, and inner peace.

Published by: Pallavi Prakashan
Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward no. 06, Nirmali, District- Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2025
ISBN: 978-93-48865-54-0
Price: 299/-
Copyright: © Publisher

Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)
Typography: Dr. Umesh Mandal, umeshberma@gmail.com
Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com
E-mail: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563
Font source: https://fonts.google.com/,
https://github.com/virtualvinodh/aksharamukha-fonts

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the prior written permission of both the author and the publisher.

समर्पण

स्वतंत्रता की विरासत और किसान आंदोलनों की हुंकार को,
अन्याय और शोषण के विरुद्ध उठती लोकतांत्रिक चेतना और श्रम के गौरव को,
मूल लेखक श्री जगदीश प्रसाद मण्डल की जनपक्षधर दृष्टि तथा
परिवर्तनकारी संकल्प को, यह संस्करण श्रद्धापूर्वक समर्पित है।

- गोसाँइ मंडल

भूमिका

अंतिम क्षण उपन्यास अपने शीर्षक की तरह ही गहरे अर्थों से परिपूर्ण है। यह कृति किसी व्यक्ति के जीवन के अंत को केवल जैविक घटना के रूप में नहीं देखती, बल्कि उस अंतिम बिंदु को सामाजिक, वैचारिक और नैतिक कसौटी में बदल देती है। यहाँ मृत्यु केवल देह का अंत नहीं, जीवन भर अर्जित विचारों, संघर्षों और आस्थाओं की परीक्षा है। उपन्यास का अंतिम पड़ाव इस अर्थ को और व्यापक बनाता है। रामकिसुन की देह की यात्रा समाप्त होती है, लेकिन उनका श्रम, विचार और सामाजिक सम्बन्ध नए रूप में आगे बढ़ते हैं। इस प्रकार **अंतिम क्षण** एक व्यक्ति-केंद्रित उपन्यास होकर भी सामूहिक जीवन और उसकी निरंतरता का दस्तावेज बन जाता है।

इस उपन्यास का कथानायक रामकिसुन है, किंतु कथा की आत्मा केवल उसी तक सीमित नहीं रहती। रामकिसुन के साथ मंगलदेव, मानेसरी, जीवनलाल, सुवंश, परिवार की स्त्रियाँ, बेटे-बेटियाँ, रिश्तेदार, पड़ोसी और पूरा कमलपुर गाँव कथा में सक्रिय रूप से शामिल होता है। उपन्यास का फलक धीरे-धीरे व्यक्तिगत जीवन से आगे बढ़कर समाज की संरचना, उसकी आस्थाओं, अंतर्विरोधों और बदलते स्वरूप को उजागर करता है। लेखक स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति अकेला नहीं जीता। उसका जीवन, रोग, मृत्यु और मृत्योत्तर कर्मकांड सामाजिक सम्बन्धों, आर्थिक परिस्थितियों और

विचारधाराओं से गहराई से जुड़े रहते हैं।

रामकिसुन का जीवन श्रम और विचार से गहराई से जुड़ा हुआ है। वह किसान है, लेकिन यह पहचान उसकी आजीविका तक सीमित नहीं रहती; यही उसकी जीवन-दृष्टि बन जाती है। खेत, बीज, पानी, मौसम और श्रम उसके चिंतन के मूल आधार हैं। वह खेती को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखता है, जिसमें अनुभव, निरीक्षण और विवेक की निरंतर भूमिका बनी रहती है। इसी दृष्टि से वह समाज की संरचना को भी परखता है। उसके लिए खेती केवल अन्न उपजाने का काम नहीं, सम्मान के साथ जीने और सामाजिक आत्मनिर्भरता अर्जित करने का माध्यम है।

रामकिसुन सामाजिक असमानताओं, जातीय विभाजनों और कर्मकांडीय जड़ताओं के प्रति सजग है। वह उन्हें मौन रूप से स्वीकार नहीं करता। उसका संघर्ष केवल शब्दों में नहीं, आचरण में प्रकट होता है। उपन्यास में उसका मौसमी रोग एक सशक्त प्रतीक के रूप में सामने आता है। यह केवल शारीरिक दुर्बलता तक सीमित नहीं रहता; यह उस सामाजिक विडंबना की ओर भी संकेत करता है, जहाँ श्रमशील शरीर धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है और व्यवस्था उसे अपेक्षित सहारा देने में असफल रहती है।

इसके बावजूद रामकिसुन रोग को जीवन की धुरी नहीं बनने देता। वह उसे सहचर की तरह स्वीकार करता है और अपने कर्मपथ से विचलित नहीं होता। उसकी यह स्थिति ग्रामीण जीवन की उस गहरी जिजीविषा को उजागर करती है, जो अभाव, रोग और असुरक्षा के बीच भी सक्रिय बनी रहती है। यही जिजीविषा उसे व्यक्तिगत चरित्र से आगे बढ़ाकर सामाजिक प्रतीक का रूप देती है। मृत्यु के बाद जब उसका अधूरा श्रम सामूहिक श्रम में बदलता है, तब उसका जीवन एक व्यक्ति की सीमा पार कर सामाजिक उत्तरदायित्व का

आधार बन जाता है।

उपन्यास का वैचारिक केंद्र रामकिसुन और मंगलदेव के संवादों में विकसित होता है। मंगलदेव केवल मित्र नहीं हैं; वे प्रश्न, विवेक और वैचारिक प्रेरणा की भूमिका निभाते हैं। प्रश्न उठाना, संभावनाओं की ओर संकेत करना और समाज को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने की प्रेरणा देना उनका कार्य है। उनके संवाद आत्मचिंतन को सक्रिय करते हैं और जड़ धारणाओं को चुनौती देते हैं। रामकिसुन की मृत्यु के बाद यही वैचारिक मित्रता परीक्षा के वास्तविक धरातल पर उतरती है। मंगलदेव को केवल मित्र की अंतिम इच्छा पूरी नहीं करनी है, बल्कि उसके परिवार और विचारों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अर्थ भी निर्धारित करना है।

खेती की उन्नति, लघु उद्योगों की सम्भावनाएँ और मशीनों के विवेकपूर्ण प्रयोग जैसे विषय उपन्यास की संरचना को विस्तार प्रदान करते हैं। कथा ग्रामीण जीवन से आगे बढ़कर राजनीतिक अर्थशास्त्र और सामाजिक दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश करती है। अंतिम पड़ाव में यह विचार ठोस कार्ययोजना का रूप ग्रहण करता है। खेत की आमदनी और खर्च का हिसाब रखना, किसानों के अनुभव और ज्ञान को साझा करना, पढ़े-लिखे युवक-युवतियों को खेती के विज्ञान से जोड़ना तथा गाँव के हस्तशिल्प को जातीय बन्धनों से मुक्त कर नई मशीन और ज्ञान से सम्बद्ध करना, ये सभी विचार ग्रामीण पुनर्निर्माण की दिशा प्रस्तुत करते हैं। लेखक स्पष्ट करते हैं कि भूख और बेरोजगारी की समस्या का समाधान किसी एक पद्धति में सीमित नहीं है। समाधान उस संतुलन में निहित है, जहाँ परंपरा अनुभव देती है, आधुनिकता नए साधन उपलब्ध कराती है और सामूहिक विवेक दोनों को जीवनोपयोगी दिशा देता है।

अंतिम क्षण में परंपरा और परिवर्तन का संघर्ष अत्यंत सूक्ष्मता

से उभारा गया है। श्राद्ध-कर्म, दाह-संस्कार, नख-बाल कटवाना और भोज-भात जैसी क्रियाएँ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, सामाजिक दबाव और आर्थिक बोझ के माध्यम भी बन सकती हैं। रामकिसुन की यह इच्छा कि मृत्योत्तर कर्मकांड मंगलदेव के विचार के अनुरूप हों, परिवार और समाज को एक कठिन प्रश्न के सामने खड़ा कर देती है। लेखक इस टकराव को न अतिरंजित करते हैं, न किसी पक्ष का उपहास करते हैं। अंतिम पड़ाव में समाधान संवाद, पारिवारिक सहमति और सामाजिक समझ के माध्यम से सामने आता है। परिवार पर कोई कर्मकांड नहीं थोपा जाता, कर्ज लेकर भोज नहीं किया जाता और मृतक की स्मृति को सामूहिक विचार-विमर्श से जोड़ा जाता है। इस प्रकार परिवर्तन समाज को तोड़कर नहीं, उसके भीतर सहमति और विवेक का मार्ग बनाकर आगे बढ़ता है।

रामकिसुन के परिवार की सहायता का प्रश्न भी उपन्यास को महत्त्वपूर्ण मानवीय गहराई देता है। मंगलदेव परिवार की जिम्मेदारी स्वीकार करते हैं, लेकिन स्वयं को उसका मालिक नहीं मानते। उनके लिए सहायता का अर्थ परिवार के निर्णय अपने हाथ में लेना नहीं, उसकी अपनी शक्ति बढ़ाना है। खेती के आवश्यक कामों को सँभालना, सामूहिक श्रम की व्यवस्था करना और बच्चों की पढ़ाई बनाए रखना इसी दृष्टि के अंग हैं। लेखक यहाँ दया और उत्तरदायित्व के बीच स्पष्ट भेद स्थापित करते हैं। सच्ची सहायता वही है जो किसी परिवार को आश्रित न बनाए, बल्कि उसे अपने पैरों पर खड़े होने की सामर्थ्य दे।

स्त्री-पात्रों की भूमिका उपन्यास को विशेष गहराई प्रदान करती है। मानेसरी सेवा, धैर्य और पारिवारिक उत्तरदायित्व का प्रतिनिधित्व करती है। रामकिसुन की पत्नी का दुःख मौन है, लेकिन वह निर्णय के समय अपनी बात स्पष्ट रूप से रखती है। वह न कर्ज लेकर भोज

करना चाहती है, न अपने पति के विचारों का अपमान। मंगलदेव इस बात पर बल देते हैं कि परिवार की स्त्रियों और बेटे-बेटियों की बात पहले सुनी जाए। विवाहित बेटी को पराया नहीं माना जाता और पारिवारिक निर्णयों में बेटों तथा बेटियों की समान भागीदारी स्वीकार की जाती है। इस प्रकार उपन्यास की स्त्रियाँ केवल मौन पीड़ा की प्रतीक नहीं रहतीं; वे परिवार की नैतिक और व्यावहारिक दिशा निर्धारित करने वाली सहभागी भी बनती हैं।

उपन्यास विचारधारा को स्थिर या एकरैखिक रूप में प्रस्तुत नहीं करता। रामकिसुन के वैचारिक मार्ग में थकावट, भ्रम और समझौते भी उपस्थित हैं। संयुक्त परिवार के मतभेद, नई पीढ़ी की दुविधाएँ और कुछ पुराने साथियों का परंपरा की ओर लौट जाना दर्शाता है कि विचार समय, परिस्थिति और सामाजिक दबावों से प्रभावित होते हैं। फिर भी परिवर्तन की सम्भावना समाप्त नहीं होती। पहली बैठक में परंपरा का समर्थन करने वाला वृद्ध अंत में स्वीकार करता है कि किसी व्यक्ति को याद करना भोज देने से अधिक आवश्यक है। विचार खेत की नाली की तरह पहले एक छोटी-सी राह बनाता है और फिर प्रवाहित जल स्वयं उसे चौड़ा करता जाता है। लेखक किसी को दोषी ठहराने के स्थान पर यह दिखाते हैं कि सामाजिक परिवर्तन संवाद, अनुभव और समय से निर्मित होने वाली दीर्घ प्रक्रिया है।

मृत्यु का प्रसंग उपन्यास का सबसे मार्मिक और वैचारिक रूप से सघन भाग है। रामकिसुन का अंत आकस्मिक और लगभग सामान्य-सा है। कटहल खाने के बाद उत्पन्न स्थिति उस विडंबना को सामने लाती है, जहाँ जीवन की बड़ी योजनाएँ देह की क्षणभंगुरता से टकरा जाती हैं। यह मृत्यु नाटकीय नहीं है और इसी साधारणता में उसकी गहराई छिपी है। किंतु कथा मृत्यु पर समाप्त नहीं होती। अंतिम दृश्य में युवक रामकिसुन के अधूरे खेत में उतरते हैं, उनका बेटा कुदाल

उठाता है और मिट्टी का पहला ढेला टूटता है। उगते सूर्य और नई पलटी गई मिट्टी की सोंधी गंध के बीच रामकिसुन का अधूरा श्रम नई पीढ़ी के हाथों आगे बढ़ता है। यही दृश्य उपन्यास के शीर्षक को उसका पूर्ण अर्थ प्रदान करता है।

उपन्यास की भाषा सरल, प्रवाहमयी और जीवन के अत्यंत निकट है। जगदीश प्रसाद मण्डल की अभिव्यक्ति में ग्रामीण जीवन की स्वाभाविक महक बनी रहती है। संवाद सहज हैं और उनमें किसी प्रकार का दिखावा नहीं है। वाक्य-विन्यास सामान्यतः सरल रहता है, लेकिन उसके भीतर विचारों की अनेक परतें खुलती जाती हैं। यही सहजता पाठक को कथा के संसार में प्रवेश करने देती है और उसे पात्रों के अनुभवों से जोड़ती है।

लेखक कथन के माध्यम से उपदेश नहीं देते; वे परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। पात्र अपने व्यवहार, भाषा और निर्णयों से स्वयं को प्रकट करते हैं। पाठक इन स्थितियों से अर्थ ग्रहण करता है। पत्थर का स्मारक बनाने के प्रश्न के सामने अधूरे खेत को पूरा करने का विचार रखकर लेखक स्मृति और श्रद्धांजलि का नया अर्थ प्रस्तुत करते हैं। जीवित स्मारक वही है, जिसमें मृत व्यक्ति के विचार व्यवहार और सामूहिक श्रम में उतरें। यही शिल्प उपन्यास को अध्ययन और शोध की दृष्टि से भी उपयोगी बनाता है। समाज यहाँ किसी अमूर्त सिद्धांत के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवित संरचना की तरह सामने आता है, जिसमें सम्बन्ध, संघर्ष, मूल्य और परिवर्तन अपनी वास्तविक गति में उपस्थित रहते हैं।

इस उपन्यास का हिंदी अनुवाद गोसाँइ मंडल ने किया है। अनुवाद में मूल मैथिली पाठ की संवेदना और संरचना को बनाए रखने का प्रयास सफल रहा है। ग्रामीण शब्दावली, संवादों की लय और कथ्य की गंभीरता हिंदी पाठ में भी प्रभावशाली बनी रहती है।

अनुवादक ने न भाषा को अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ बनाया है, न अनावश्यक रूप से सरलीकृत किया है। इसी कारण रचना की आत्मा और ग्रामीण-सांस्कृतिक परिवेश सुरक्षित रहते हैं।

अंतिम क्षण का महत्त्व केवल साहित्यिक नहीं, सामाजिक और वैचारिक भी है। यह उपन्यास पूछता है कि मनुष्य का मूल्यांकन उसकी बाहरी आस्था और परंपरा से किया जाए या उसके विचार, श्रम और व्यवहार से। यह रचना दर्शाती है कि जीवन का **अंतिम क्षण** संपूर्ण जीवन का सार बन सकता है। रामकिसुन का जीवन और उसकी मृत्यु इस बात का प्रमाण है कि विचार केवल बहस, असहमति और संवाद में जीवित नहीं रहते; वे पारिवारिक निर्णयों, सामाजिक व्यवहार और सामूहिक श्रम में उतरकर अपनी वास्तविक निरंतरता प्राप्त करते हैं।

समकालीन ग्रामीण समाज को समझने के लिए **अंतिम क्षण** एक महत्त्वपूर्ण पाठ के रूप में सामने आता है। यह पाठक को सतही संवेदना से आगे ले जाकर गंभीर चिंतन की ओर प्रेरित करता है। परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन कैसे स्थापित हो, श्रम का सामाजिक सम्मान किस प्रकार पुनर्निर्मित हो, शिक्षा को नौकरी की सीमित धारणा से बाहर निकालकर जीवन और उत्पादन से कैसे जोड़ा जाए तथा ग्रामीण ज्ञान को सामूहिक सम्पत्ति में कैसे बदला जाए, इन प्रश्नों को कथा-अनुभव के स्तर पर प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास ग्रामीण जीवन की जटिलताओं को सरल घटनाओं के माध्यम से उजागर करता है। सामाजिक बदलाव, आर्थिक दबाव, पारिवारिक उत्तरदायित्व और मानवीय मूल्य एक साथ उपस्थित रहते हैं। **अंतिम क्षण** केवल ग्रामीण जीवन का चित्र प्रस्तुत नहीं करता; वह ग्रामीण चेतना के भीतर चल रहे द्वंद्व और परिवर्तन की सम्भावनाओं को भी स्पष्ट करता है। रामकिसुन की देह की यात्रा

समाप्त होती है, लेकिन उनका श्रम और विचार नई मिट्टी की तरह सामने आता है। यही निरंतरता इस रचना को गंभीर सामाजिक विमर्श और स्थायी मानवीय अनुभव का रूप प्रदान करती है।

लिजेंड हैं जय शंकर प्रसाद जी,
जगदीश प्रसाद मण्डल भी कम नहीं,
वो दौर था शुरू का,
है '**अंतिम क्षण**' का कम नहीं।

- रामेश्वर प्रसाद मण्डल
उपन्यासकार
सुन्दर भवन, निर्मली
14 दिसम्बर 2025
मो. 9973541877

अनुवादक का वक्तव्य

अंतिम क्षण का अनुवाद करते समय मेरे सामने सबसे बड़ी चुनौती भाषा से अधिक जीवन की थी। यह उपन्यास केवल शब्दों के सहारे नहीं चलता; यह अनुभवों की एक पूरी दुनिया रचता है। जगदीश प्रसाद मण्डल का गद्य मिथिलांचल की मिट्टी से उठता है। उसमें श्रम की गंध, स्मृति की गहराई और विचार की सघनता है। इस कारण उसके अनुवाद में शब्दों के साथ उस जीवन-संसार को भी दूसरी भाषा तक पहुँचाना आवश्यक था।

इस गद्य में कोई सजावटी संरचना नहीं मिलती। भाषा जीवन के साथ चलती और उसी की गति से साँस लेती है। ऐसे पाठ का अनुवाद करते समय शब्दों की समानता पर्याप्त नहीं होती; भाव, दृष्टि और जीवन-बोध को भी साथ लेकर चलना पड़ता है। यह प्रक्रिया भाषिक कार्य से आगे बढ़कर सांस्कृतिक और मानवीय जिम्मेदारी बन जाती है। मेरा प्रयास रहा कि मूल जीवन-दृष्टि अपनी ईमानदारी और गरिमा के साथ हिंदी में भी जीवित रह सके।

यह उपन्यास मृत्यु की कथा नहीं, जीवन की कसौटी है। रामकिसुन का जीवन और उसका **अंतिम क्षण** पाठक को यह सोचने के लिए विवश करता है कि मनुष्य का मूल्य उसके कर्म से तय होता है या परंपरा से, उसकी बाहरी आस्था से या उसके श्रम और व्यवहार से। मैथिली मूल पाठ में यह प्रश्न किसी घोषणात्मक स्वर के बिना

अत्यंत सहजता से उभरता है। अनुवाद करते समय मेरी कोशिश रही कि यह सहजता बनी रहे, भाषा अनावश्यक रूप से भारी न हो और विचारों को कृत्रिम तीव्रता न दी जाए।

मैथिली भाषा की एक प्रमुख विशेषता उसका जीवन के अत्यंत समीप होना है। खेत, मौसम, देह, रोग, सम्बन्ध और मृत्यु उसमें अलग-अलग विषयों की तरह उपस्थित नहीं होते; वे एक निरंतर प्रवाह में साथ चलते हैं। यही प्रवाह इस भाषा की संवेदनात्मक शक्ति बनता है। मैथिली में रचित ऐसी कृति को समझना जीवन के भीतर सक्रिय अनेक सम्बन्धों और अनुभवों को समझने जैसा है।

हिंदी में अनुवाद करते समय यह चुनौती बनी रहती है कि मूल भाषा का स्वभाव विकृत न हो। **अंतिम क्षण** के अनुवाद में इस संतुलन पर विशेष ध्यान दिया गया है। ग्रामीण जीवन की शब्दावली को यथासम्भव सुरक्षित रखा गया है। संवादों की लय और कथन की गति को भी सहज बनाए रखने का प्रयास किया गया है। उद्देश्य यह रहा कि हिंदी पाठक पाठ को पढ़ते हुए उस जीवन से दूरी अनुभव न करे; वह स्वयं को खेत, दरवाजे, आँगन और सामाजिक बैठकों के बीच उपस्थित पाए। यही निकटता इस अनुवाद की मूल आकांक्षा है।

रामकिसुन का चरित्र इस उपन्यास की धुरी है। वह नायक अवश्य है, लेकिन पारंपरिक अर्थों में नहीं। उसमें न नाटकीय विद्रोह है, न आत्म-प्रदर्शन की प्रवृत्ति। उसका जीवन श्रम, विवेक और मौन संघर्ष से बना है। उसका रोग केवल शरीर की दुर्बलता नहीं, उस सामाजिक व्यवस्था की दुर्बलता की ओर भी संकेत करता है जो श्रमशील व्यक्ति को अपेक्षित सुरक्षा नहीं दे पाती। फिर भी रामकिसुन अपने जीवन को रोग की सीमा में नहीं बाँधता। उसकी मृत्यु के बाद उसका अधूरा श्रम और सामाजिक उत्तरदायित्व जीवित लोगों के हाथों आगे बढ़ता है। इस निरंतरता को अनुवाद में सुरक्षित रखना मेरे लिए

विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था।

उपन्यास का दूसरा सशक्त पक्ष उसका वैचारिक धरातल है। मंगलदेव और रामकिसुन के संवादों में प्रवाहित चिंतन किसी सैद्धांतिक ग्रंथ से ग्रहण किया हुआ नहीं लगता; वह जीवन के अनुभव से उपजा हुआ विचार है। खेती, लघु उद्योग, मशीन, परंपरा और आधुनिकता पर होने वाली बातचीत कथा को व्यापक अर्थ प्रदान करती है। इन संवादों के माध्यम से उपन्यास सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों की ओर उन्मुख होता है। विचार खेत, श्रम और समाज से जुड़कर ही अपनी विश्वसनीयता अर्जित करता है।

इन वैचारिक अंशों का अनुवाद करते समय स्पष्टता बनाए रखना आवश्यक था। साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ा कि कथन का प्रवाह बाधित न हो, विचार की गहराई बनी रहे और भाषा सहज रहे। अंतिम पड़ाव में खेती का हिसाब रखने, ज्ञान को साझा करने, पढ़े-लिखे युवाओं को कृषि से जोड़ने और हस्तशिल्प को जातीय बन्धनों से मुक्त करने की बातें आती हैं। यहाँ अनुवाद को वैचारिक स्पष्टता के साथ ग्रामीण व्यवहार की स्वाभाविकता भी बनाए रखनी थी। प्रयास यही रहा कि ये संवाद पाठक को बोझिल न लगें; वे उसकी सोच को जगाएँ और कथा के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा दें।

अंतिम क्षण में मृत्यु के बाद होने वाले कर्मकांडों की चर्चा अत्यंत संवेदनशीलता से की गई है। लेखक न परंपरा का उपहास करते हैं, न उसका आँख मूँदकर समर्थन। रामकिसुन की इच्छा और समाज की प्रतिक्रिया के बीच उत्पन्न तनाव अंतिम पड़ाव में संवाद और सहमति की दिशा ग्रहण करता है। परिवार की बात पहले सुनी जाती है, किसी पर कर्मकांड नहीं थोपा जाता और कर्ज लेकर भोज करने से इनकार किया जाता है। इस प्रसंग का अनुवाद करते समय यह सावधानी आवश्यक थी कि विरोध कठोर अस्वीकार में और

सहमति रूढ़ि-समर्थन में न बदल जाए। मूल कथा का स्वर सुधार का है, सामाजिक विखंडन का नहीं।

स्त्री-पात्रों की उपस्थिति उपन्यास को विशेष गहराई देती है। मानेसरी जैसे पात्रों का मौन बहुत कुछ कहता है, लेकिन अंतिम पड़ाव स्त्री की भूमिका को केवल मौन तक सीमित नहीं रखता। रामकिसुन की पत्नी अपने परिवार और पति के विचारों के सम्बन्ध में स्पष्ट मत रखती है। बेटियों को पारिवारिक निर्णयों में समान भागीदार माना जाता है और विवाहित बेटी को पराया मानने से इनकार किया जाता है। अनुवाद में स्त्री-पात्रों के मौन और उनके स्पष्ट कथन, दोनों के संतुलन को सुरक्षित रखना आवश्यक था।

उपन्यास का अंतिम दृश्य अनुवाद की दृष्टि से विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था। युवक रामकिसुन के अधूरे खेत में उतरते हैं, उनका बेटा कुदाल उठाता है और मंगलदेव उसी स्थान से काम आगे बढ़ाने के लिए कहते हैं, जहाँ रामकिसुन उसे छोड़ गए थे। टूटते ढेले, नई मिट्टी की सोंधी गंध और उगते सूर्य की किरणें कथा के वैचारिक निष्कर्ष को दृश्य रूप देती हैं। यहाँ मृत्यु स्मृति में और स्मृति सामूहिक श्रम में बदलती है। इस दृश्य की संवेदना को बिना अतिरिक्त व्याख्या के हिंदी में उतारना एक विशेष दायित्व था।

यह स्वीकार करना आवश्यक है कि प्रत्येक अनुवाद अपनी सीमा में किया गया एक समझौता होता है। कुछ शब्द, सांस्कृतिक संकेत और भाव ऐसे होते हैं, जिन्हें पूरी तरह दूसरी भाषा में स्थानांतरित कर पाना सम्भव नहीं होता। फिर भी मेरा प्रयास रहा कि मूल पाठ की आत्मा सुरक्षित रहे। यदि यह अनुवाद पाठकों को जगदीश प्रसाद मण्डल के साहित्यिक संसार की ओर एक कदम भी आगे बढ़ाता है तो मैं अपने श्रम को सार्थक मानूँगा।

अंतिम क्षण आज के समय में इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि

यह विकास, प्रगति और आधुनिकता के शोर के बीच मनुष्य के मूल प्रश्नों की ओर लौटने का आग्रह करता है। यह हमें याद दिलाता है कि खेत, श्रम, विचार और मानवीय सम्बन्ध आज भी जीवन की धुरी हैं। शिक्षा को जीवन से, ज्ञान को समाज से और उत्पादन को सम्मान से जोड़े बिना कोई भी ग्रामीण समाज टिकाऊ तथा न्यायपूर्ण नहीं बन सकता।

एक अनुवादक के रूप में मेरी आकांक्षा है कि हिंदी पाठक इस उपन्यास को केवल एक कथा के रूप में न पढ़ें, बल्कि इसे अपने समय और समाज के आईने की तरह देखें। यदि यह रचना पाठकों के भीतर प्रश्न जगाती है, उन्हें ठहरकर सोचने और अपने आसपास के जीवन को नए ढंग से देखने के लिए प्रेरित करती है तो यही इस अनुवाद की सबसे बड़ी सफलता होगी।

- गोसाँइ मंडल
अवकाश प्राप्त शिक्षक
सिकरहटा, निर्मली, सुपौल
मो. +91 62001 37156

पहला पड़ाव

शाम के सात बजे बस से उतरकर जब मंगलदेव दरवाजे पर पहुँचे ही थे कि भतीजा सहदेव ने कहा-

"काका, रामकिसुन काका की हालत बहुत बिगड़ गई है।"

मंगलदेव और रामकिसुन उम्र में दो साल के ही फासले पर थे। पचास वर्षों से दोनों एक ही विचारधारा में बंधे हुए थे। इसी कारण कई मुकदमों में साथ फँसे, कई बार जेल गए और कई बार विरोधियों से लाठी उठाकर लड़ाई लड़ी। यहाँ लड़ाई का मतलब यही था कि सामाजिक मुद्दों पर दोनों एक पक्ष बनकर खड़े हुए।

पाँच दिन बाद पटना से लौटे मंगलदेव का शरीर बुरी तरह थका हुआ था। ऊपर से उम्र भी सत्तर पार कर चुकी थी। हालाँकि श्रम करने की आदत उन्हें अब तक ज्यादा अशक्त नहीं होने दिया था, लेकिन पटना प्रवास के किसान आन्दोलन के कार्यक्रम ने उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से थका दिया था। तीन दिन से न नहाए थे, न ठीक से खा पाए थे, इसलिए शरीर में कमजोरी भी आ ही गई थी। हाँ, कृष्ण जैसी आत्मिक शक्ति उनके भीतर जरूर प्रज्वलित थी, जिससे सब कुछ भीतर से शांत-चित्त रहता था।

भतीजे के मुँह से रामकिसुन की खबर सुन कर मंगलदेव ने पत्नी को पुकारा-

"एक लोटा पानी दरवाजे पर ले आओ।"

वैसे ही मानेसरी पति की आज्ञाकारी थीं, ऊपर से पाँच दिन बाद पति की आवाज सुनाई दी थी। वे अन्य औरतों की तरह नहीं थीं कि कह देतीं 'अभी बातचीत कर रही हूँ, थोड़ी देर में आती हूँ।' मानेसरी

ऐसी आज्ञाकारी स्त्री थीं कि सत्तर वर्ष की आयु में भी पति की आवाज सुनते ही अपने काम का महत्व भूल जातीं, मानो दासी बन गई हों।

कानों में पति की आवाज पहुँचते ही मानेसरी ने अपने सूप में बिखरी दाल को वैसे ही छोड़ दिया, दाने चुनना छोड़कर सीधे ओसारे से लोटा उठाया और चापाकल की ओर बढ़ीं। पानी भरकर दरवाजे पर पहुँचीं तो मंगलदेव बोले-

"जब तक मुँह-हाथ धोकर पानी पी लूँ, तब तक चाय बना लाओ।"

दरवाजे पर की यह बात, यानी मानेसरी और मंगलदेव की बातचीत, बधु सुदेसरी ने सुन ली। तभी वह चाय बनाने में लग गई।

चाय पीने से पहले मंगलदेव ने कपड़े बदल लिए। वैसे तो गाँव में वे वही आदमी थे जो लुंगी और गमछे में सारा गाँव घूम लेते थे। लुंगी पहने, कंधे पर गमछा डाले ही बैठे थे कि मानेसरी चाय लेकर पहुँच गईं। पहला घूँट लेते ही सुवंशलाल आ पहुँचा। तीस वर्ष का युवक सुवंशलाल दस-बारह वर्षों से मंगलदेव के सम्पर्क में था। उसे देखते ही मंगलदेव बोले-

"आओ सुवंश, गाँव का हाल-चाल कैसा है? अभी-अभी पटना से लौटा हूँ और सहदेव बता रहा था कि रामकिसुन काका की हालत बहुत बिगड़ गई है। क्या हुआ उन्हें?"

मंगलदेव की बात सुनकर सुवंशलाल बोला-

"काका, अब तो रामकिसुन काका की उम्मीद बहुत कम है। हाँ, जब तक की खबर मिली थी तब तक वे जीवित थे, पर अभी की स्थिति नहीं बता सकता।"

जैसे थका-हारा आदमी पानी में नमक-चीनी घोलकर पीते ही ताजगी महसूस करता है, वैसे ही पानी और चाय पी लेने के बाद

मंगलदेव के भीतर भी स्फूर्ति लौट आई। बोले-

“सुवंश, गाड़ी ठीक हालत में है न?”

सुवंशलाल बोला-

“क्यों, अभी क्या ऐसा जरूरी काम आ गया, गाड़ी का?”

मंगलदेव ने कहा-

“झंझारपुर चलना है। पहले रामकिसुन से मिलेंगे, फिर जो करना होगा करेंगे।”

मंगलदेव जैसे एकबोलिया आदमी थे, वैसे ही सुवंशलाल भी एकचलिया हैं हीं। उन्होंने जैसे ही कहा, सुवंशलाल तुरंत तैयार हो गया-

“जब तक आप दरवाजे से निकलकर सड़क पर आएँगे, तब तक मैं भी गाड़ी निकालकर सड़क पर पहुँच जाऊँगा।”

उसकी तैयारी देख मंगलदेव ने कहा-

“झंझारपुर में किस डॉक्टर के यहाँ रामकिसुन हैं, तुम्हें तो जानकारी में होगी।”

सुवंशलाल बोला-

“हाँ, पहले तो प्रभास बाबू ही डॉक्टर थे, पर अब तो कहने भर की देर है, दर्जनों डॉक्टर हो गए हैं झंझारपुर में।”

युवा होने के कारण सुवंशलाल की बातें भी युवा ढंग की थीं। उसने किसी खास नाम का उल्लेख करने के बजाय सामूहिक चर्चा ही शुरू कर दी। यह सुनकर मंगलदेव ने कहा-

“प्रभास बाबू की बात क्यों कर रहे हो, अपना तो सब कुछ बरबाद हो गया उनका।”

मंगलदेव के मुँह से प्रभास बाबू का बरबाद होना सुनकर सुवंश

की जिज्ञासा और बढ़ी। बोला-

“कैसे काका?”

झंझारपुर जाने की जल्दी में थे मंगलदेव, पर यहाँ मन में द्वन्द्व खड़ा हो गया। एक ओर रामकिसुन को देखना था जो मृत्यु-शय्या पर थे, दूसरी ओर सुवंश का प्रश्न था कि प्रभास बाबू के आने से इस इलाके को चिकित्सीय सुविधा क्या मिली। प्रभास बाबू की छवि याद आते ही उनका मन रामकिसुन से थोड़ा हटकर उसी ओर चला गया। उन्होंने कहना शुरू किया-

“वत्स सुवंश, यह उन्नीस सौ चालीस के आसपास की बात है। बंगाल में जबरदस्त अकाल पड़ा था। उसी समय गाँधीजी के नेतृत्व में अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ भीषण आन्दोलन फैला हुआ था। बंगाल अंग्रेज़ों का गढ़ और व्यापार का केन्द्र भी था।”

बीच में सुवंश बोल पड़ा-

“वैसे भी बंगाली लोग आगे रहते हैं, ऊपर से इतना मौका मिला होगा तो और भी जोरदार आन्दोलन फैला होगा।”

उसकी बात रोकते हुए मंगलदेव ने कहा-

“इतना भीषण अकाल पड़ा कि बंगालियों के लिए अपनी ही धरती पर जीना कठिन हो गया। लोग जगह-जगह से पलायन करने लगे।”

सुवंश ने पूछा-

“कैसा अकाल पड़ा था?”

मंगलदेव बोले-

“आज जो बंगाल औद्योगिक रूप से विकसित है, उस समय वैसा नहीं था। सिर्फ कोलकाता शहर में उद्योग था, बाकी क्षेत्र खेती पर निर्भर था। तीन-चार साल तक पानी की कमी रही, फसलों में

बीमारी का प्रकोप हो गया, जिससे उत्पादन ही नहीं हुआ। नतीजा यह हुआ कि भीषण भुखमरी फैल गई। पाँच लाख से ऊपर लोग मर गए और बहुत से लोग बंगाल छोड़कर भागने लगे।"

सुवंश बोला-

"प्रभास बाबू भी उसी समय झंझारपुर आए?"

मंगलदेव-

"हाँ। झंझारपुर उन्हें रास आ गया। परिवार बसाते-बनाते काफी संपत्ति बना ली- खेत, मकान सब। साथ ही इतनी प्रतिष्ठा कमा ली कि आज भी बच्चा-बच्चा उनका नाम जानता है।"

सुवंश बोला-

"अब तो सब कुछ खत्म हो गया। बेटे-भतीजे सारी संपत्ति- खेत और मकान- बेच कर बंगाल लौट गए।"

इसी बीच छेदीलाल आकर बोला-

"मंगलदेव भैया, बहुत बुरा हुआ। रामकिसुन भैया मर गए, अभी-अभी एक आदमी आया है और उसने ही यह बताया।"

छेदीलाल के मुँह से यह खबर सुनते ही मंगलदेव का शरीर ऐसे निस्तेज हो गया, जैसे गुब्बारे से हवा निकल जाती है। वे धम्म से सड़क पर बैठ गए। दोनों आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। कुछ ही देर में कानोंकान गाँव में खबर फैल गई कि रामकिसुन चल बसे..!

मंगलदेव को यूँ आँसुओं में डूबा देख छेदीलाल बोला-

"भैया, रोने-धोने से कुछ नहीं होगा। इस शरीर का कोई ठिकाना नहीं कि कब चेतनशील रहेगा और कब चेतनहीन हो जाएगा।"

हालाँकि मंगलदेव स्वयं जानते थे कि शरीर क्षणभंगुर है, फिर भी किसी के साथ जो जीवन भर का सम्बन्ध बन जाता है, वह मन और विचारों को तोड़ता ही है। तभी सुवंश मोटरसाइकिल सड़क पर

रोककर उनके पास पहुँचा। छेदीलाल का चेहरा देखकर ही वह समझ गया कि कोई दुखद समाचार मिला है, तभी काका इतने व्यथित हैं। मन का बोझ हल्का करने के लिए उसने पूछा-

"छेदी भैया, रामकिसुन काका की क्या खबर है?"

आँखों में भरे आँसू पोंछते हुए छेदीलाल बोला-

"रामकिसुन भैया गुजर गए!"

सुवंश चौंका-

"तुम्हें कैसे पता?"

छेदीलाल बोला-

"रामकिसुन भैया के घर से ही लौट रहा हूँ। आँगन में रोना-धोना हो रहा है।"

गाँव के वातावरण में वैसे भी ऐसी खबरें फैलती हैं जो सौ प्रतिशत सच रहती हैं, भले ही कुछ झूठी भी हो। सुवंश ने कहा-

"काका, यहाँ रोने से कुछ न होगा। मैंने भी गाड़ी आँगन में ही रोक दी है। चलिए, हम दोनों सीधे रामकिसुन काका के घर चलते हैं। अपनी आँखों से देखेंगे, तभी असलियत साफ होगी।"

मंगलदेव बोले-

"सुवंश, पहले यह पता करो कि अगर रामकिसुन नहीं रहे, तो उनका शव झंझारपुर से आ चुका है या अभी लाया जा रहा है।"

सुवंश ने उत्तर दिया-

"वह तो वहाँ पहुँचने पर ही देखेंगे।"

संयोग ऐसा बना कि मंगलदेव और सुवंश घर पर पहुँचे ही थे कि झंझारपुर से टेम्पो में रामकिसुन का शव भी आ पहुँचा। शव को दरवाजे पर उतारकर रख दिया गया और टेम्पोवाला लौट गया।

मंगलदेव को देखते ही जीवनलाल बोला-

"मंगल भैया, चौधरीजी के यहाँ–चौधरीजी मतलब डॉक्टर–रामकिसुन भैया को ले गए थे। जाँच-पड़ताल चल ही रही थी कि बीच में ही प्राण निकल गया।"

मंगलदेव ने पूछा-

"रामकिसुन की तबीयत कब से बिगड़ने लगी थी?"

जीवनलाल ने बताया-

"दिन के करीब बारह बजे से। खाने के समय कटहल के कोहे खा लिए थे, उसके बाद पेट फूलने लगा। जब तक सह सके, किसी को कुछ नहीं कहा। लेकिन जब पेट छाता की तरह तन गया और साँस लेने में दिक्कत होने लगी, तब शोर मचाया। दोनों भाई मिलकर ग्यारह बजे तक कुदाल चला रहे थे, इसलिए मन में कोई आशंका नहीं थी।"

सुवंश ने पूछा-

"फिर बाद में क्या हुआ?"

जीवनलाल ने कहा-

"जब हम पहुँचे तो देखा वे छटपटा रहे थे। पूछा, 'भैया क्या हो रहा है?' उनमें बोलने की ताक़त नहीं थी। हाथ से पेट की ओर इशारा किया। बोलती बंद देख मैंने भाभी को, यानी उनकी पत्नी को, बुलाकर कहा कि भैया को डॉक्टर के पास लेकर चलिए।"

यह सुनते ही मंगलदेव का मन धक से रह गया। दरअसल, रामकिसुन बीस साल से भीतर ही भीतर रोग से पीड़ित थे। दवाइयाँ, परहेज़ सब करते थे। ऊपर से कटहल जैसा भारी फल भरपेट खा लेना, उसी का परिणाम यह हुआ। मगर अब और क्या उपाय! वे बोले-

"जो होना था, हो गया। अब आगे का क्या सोच रहे हो?"

जीवनलाल बोला- "अब आगे क्या सोचना। जो अगली क्रिया

है, वही तो करनी है।"

उसकी बात सुनकर मंगलदेव के मन में रामकिसुन के साथ पचास वर्षों का सम्बन्ध कौंध उठा। अनगिनत काम, साझेदारी के वे सारे पल स्मृति में उतर आए। लेकिन परिवार और समाज में उठे रोने-बिलखने के स्वर ने उन्हें फिर वर्तमान में ला खड़ा किया। मन में धक से विचार उठा कि हमारे समाज में तो यही रिवाज़ है– जितनी जल्दी हो सके, शव का दाह कर दिया जाए, पर तुरंत ही भीतर की आवाज़ ने कहा कि तीन-तीन, चार-चार दिन तक शव को रखने की परंपरा भी रही है। मंगलदेव बोले-

"आगे की क्रिया को आगे बढ़ाओ।"

जीवनलाल ने कहा-

"भैया! पाँचों बहनें, मतलब आठ भाई-बहन, रामकिसुन हैं। सबको मोबाइल से खबर दे दी है। वे जब आएँगे, तभी दाह-संस्कार पर विचार होगा।"

यह बात मंगलदेव को ठीक लगी। गाँव में उन्होंने देखा भी था कि कई बार तीन-चार दिन तक शव रखे जाते हैं। साथ ही मन में यह भी आया कि आखिर घटना जिस परिवार की है, निर्णय का अधिकार भी उसी परिवार को होना चाहिए। समाज तो समुद्र की तरह गहरा है, जिसमें तरह-तरह की परंपराएँ बहती रहती हैं।

मंगलदेव ने पूछा-

"जीवनलाल, अंतिम साँस के समय–मतलब जब मृत्यु सामने खड़ी थी–तू पास ही था या दूर?"

जीवनलाल बोला-

"पास ही था भैया। धीरे-धीरे भैया की तड़प कम होने लगी और आवाज़ में एक टंकार-सी आ गई।"

मंगलदेव ने पूछा-

"कुछ कहा भी उन्होंने?"

जीवनलाल बोला-

"हाँ।"

मंगलदेव-

"क्या कहा?"

जीवनलाल बोला-

"जब प्राण निकल रहा था, तब कहा कि मंगलदेव भैया से कह देना कि परिवार को देखते रहेंगे।"

जीवनलाल के मुँह से "रामकिसुन के परिवार का ध्यान रखना" सुनते ही मंगलदेव के मन में दूसरी पत्नी, यानी रामकिसुन की दूसरी गृहिणी और पाँचों बेटे-बेटियों की छवि घूमने लगी। एक साधारण परिवार के रामकिसुन ने चार बेटियों में से तीन की शादियाँ निबटा दी थीं। आज के समय में मध्यमवर्गीय परिवार की एक बेटी की शादी ही दस लाख पर पहुँच जाती है, फिर भी उन्होंने यह सब निभाया। एक बेटी, चौथी, अभी शेष थी। पाँचवें क्रम में बेटा है, जो अभी हाई स्कूल में पढ़ रहा है। अपने विचारों के बोझ को हल्का करते हुए मंगलदेव ने पूछा-

"और कुछ रामकिसुन ने कहा या बस इतना ही?"

जीवनलाल बोला-

"डॉक्टर साहब कह रहे थे कि अभी तक मस्तिष्क में कोई गड़बड़ी नहीं हुई थी।"

डॉक्टर की यह राय सुनकर मंगलदेव के भीतर से आवाज आई कि पचास वर्षों में गढ़ा हुआ मस्तिष्क यूँ ही थोड़े विचलित हो जाएगा। मैंने रामकिसुन के बारे में लोग कुछ भी सोचें या कहें, पर वे तो पचास

वर्षों से उनके साथ रहकर देखा है। गाँव में कितने ही बेटे होंगे जो रामकिसुन का हाथ पकड़ पाएँ। साधारण परिवार में रहते हुए भी वे अपने परिवार के साथ समाज के दुख और तकलीफ के सवालों पर सीना तानकर हमेशा खड़े रहें। आज उस आदमी का अन्त हो गया। नई पीढ़ी तो ऐसी बन रही है कि अपने ही कुल-खानदान के पुरखों के नाम नहीं जानती, फिर वह रामकिसुन जैसे लोगों को कैसे याद रखेगी। अचानक मंगलदेव का मन मोम की तरह पिघलने लगा। बोले-

"जीवनलाल, और कुछ कहा था रामकिसुन ने?"

जीवनलाल बोला-

"अन्त में यही कहा कि मृत्यु के बाद जो क्रिया-कर्म है, वह मंगल भाई के विचार से करना।"

यह सुनते ही मंगलदेव के हृदय में जैसे जोर का धक्का लगा। उन्हें वह दिन याद आया जब भोगेंद्रजी–पूर्व सांसद और साम्यवादी विचारधारा के चिंतक–के मुँह से ब्राह्मणवाद पर पहला भाषण सुनकर रामकिसुन ने शपथ ली थी कि जब तक प्राण है, ब्राह्मणवाद का विरोध करते रहेंगे। समाज में मृत्यु के बाद जो क्रिया-कर्म चलता है, उसे जड़ से उखाड़कर समाज से बाहर फेंक देंगे। कमलपुर गाँव के बीच मंगलदेव के साथ रामकिसुन ने साथी बनकर गाँव के सैकड़ों युवकों को एक विचारधारा से जोड़ा और श्राद्ध-कर्म में जो दुराचरण है, उसका उठाव शुरू किया। दर्जनों ऐसी घटनाएँ हुईं कि मृत्यु के बाद केश कटवाने से लेकर श्राद्ध और भोज-भात तक का उठाव किया गया। आज के परिवेश में तरह-तरह के जोड़-तोड़ हुए हैं, जिससे विचारधारा में भी घट-बढ़ हुई है। इस बीच, जब से समाज में श्राद्ध-कर्म का उठाव शुरू हुआ, रामकिसुन के परिवार में माता-पिता का देहान्त भी हुआ और तब भी उन्होंने वे कर्म उठा दिए थे। आज ऐसी स्थिति बन गई है कि जिसने विरोध की अगुवाई की, वही समर्थक

बनकर अगुवाई करता दिखता है। ऐसे में क्या किया जाए?

मंगलदेव का मन एकदम चकरा गया। पर बोले कुछ नहीं। न बोलने का कारण यह था कि अभी तो रामकिसुन का दाह करना पहला काम है, पहले यही सम्पन्न हो। ऊपर से अभी तक केवल एक बहन पहुँची है, बाकी चार पीछे हैं। धीरे-धीरे अँधेरा भी गहराएगा। हो सकता है रात के कारण बहनें कल ही आ पाएँ। परिवार के लोगों ने सबको खबर कर दी है, जिससे जैसे बन पड़ेगा, पहुँच जाएगा। गाड़ियों-सवारियों की सुविधा से लोग रातों-रात भी यात्रा कर लेते हैं।

तीसरे पहर की शाम का गाढ़ा अँधेरा फैलने लगा। मंगलदेव बोले-

"जीवनलाल, अब जाता हूँ। अगर रात में ही दाह का विचार बने तो खबर देना। नहीं तो अगर कल का विचार होगा तो सुबह मैं स्वयं आ जाऊँगा।"

उधर, जीवनलाल भी श्राद्ध-कर्म के मामले में दोनों धाराओं में बँट चुका था। मतलब यह कि तीन भाइयों की भैयारी में जीवनलाल, रामकिसुन से छोटा है और ननूलाल बड़ा भाई था, जो पहले ही गुजर गया। ननूलाल के दोनों बेटे भी दोनों धाराओं में बँट गए हैं। दो धाराओं का अर्थ यह कि एक समूह समाज में उस अव्यवहारिक प्रचलन का विरोध करता है जो श्राद्ध-कर्म में चल रहा है, और दूसरा वह जो अब तक जो परम्परानुसार में हो रहा है, उसका समर्थन करता है। रामकिसुन अब तक अपनी विचारधारा–यानी श्राद्ध-कर्म के विरोध–के पोषक रहे, पर संयुक्त परिवार में भैयारी रहते हुए भी अलग-अलग परिवार बने हैं, इसलिए कभी तनातनी भी होती रही और कभी नहीं भी।

उधर, मंगलदेव के भीतर एक प्रकार की गुप्त खुशी थी, जैसे कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि तुम्हारे दोनों हाथ में लड्डू हैं, इसलिए

युद्ध करो। यदि रणक्षेत्र में मर गए तो वीरगति मिलेगी और यदि नहीं मरे, यानी जीते, तो स्वर्ग मिलेगा। श्राद्ध-कर्म की विधि तो दसवें दिन के बाद शुरू होती है, तब तक नौ दिनों में श्मशान से जुड़े कर्म होंगे, जो पहले होते हैं। मृत देह का अन्त आग में करो या मिट्टी में गाड़कर करो, या धार में बहाकर करो, जीवन का अंतिम मान यही तो है। समाज में अब भी यही जीवित है कि जब तक शव का अन्त नहीं हो जाता, समाज एकजुट रहकर काम सम्पन्न करता है और जब तीसरे दिन, यानी छौर-झँप्पी के बाद, सारा बनेगा, तब विधि-विधान शुरू होंगे। उसमें श्राद्ध-कर्म, केश कटवाने से लेकर भोज-भात तक वगैरह-वगैरह सब होगा और मरो-मिलान तो होगा ही। खाने-पीने का जो होना होगा, होता रहेगा, अभी तो रामकिसुन के शव का दाह पहला काम है, जो हमारी अपनी परीक्षा भी है। अपनी परीक्षा इसलिए कि जैसे रामकिसुन विश्वास के साथ उनके साथी बने, वैसे ही जीवन के अंतिम क्षण तक साथ निभाना है। मनुष्य को शुरू से अन्त तक जीना ही जीवन है, वही तो हो रहा है।

संयोग ऐसा बना कि खाने-पीने के बाद रात में बारिश हो गई। बारिश बहुत तेज नहीं थी, पर हल्की भी नहीं कहनी चाहिए। कुछ लड़के-लड़कियाँ सबेरे खाकर सो गए थे, उन्हें पता भी न चला कि कब बारिश हुई। पर जो माता-पिता के साथ खाने-पीने में पीछे रह गए थे, वे पीछे ही रह गए, क्योंकि बर्षा के हिसाब से पानी कम हुआ, परन्तु अधिक समय तक हुई।

रामकिसुन के घर पर तो चूल्हा भी नहीं जला, क्योंकि आँगन में मृत्यु-शरीर पड़ा हुआ था। चार बहनों में तीन तो वर्षा के बीच पहुँच गईं, मगर चौथी पीछे रह गई। वैसे भी मंगलदेव के मन में एक गहन प्रश्न उठ रहा था। प्रश्न यह कि सामाजिक मुद्दों पर–जहाँ समाज के भीतर सैकड़ों तरह के बंधन और रोक-टोक हैं–उन बंधनों को तोड़ने

के विरोध में ही समाज के भीतर एक और जमात बन जाती है। कुछ मुद्दे ऐसे होते हैं, जिनमें संगठित समूह के भीतर से ही कुछ लोग विरोध में अलग हो जाते हैं, फिर भी बहुसंख्यक का संगठन बना रहता है।

ओसारे पर बैठे मंगलदेव के मन में उठने लगा कि ऐसा तो कई बार जीवन में हुआ है, जब मृत्यु के अवसर पर, दियादी परिवार से अलग समाज के लोग शव-दाह में सहयोगी बनते हैं, लेकिन उसी के बाद नख-बाल कटवाकर अपने को पवित्र समझने लगते हैं। इसके पीछे कारण भी है– जो भी शव-दाह में गया और अगले ही दिन गाँव की सीमा पार कर बाहर के किसी काम में जाता, उसे अपना काम छोड़कर नख-बाल के झंझट में पड़ना पड़ता, जो ठीक नहीं। इसके अतिरिक्त सिनेमा के कलाकारों के प्रभाव से भी लोग केश के मर्म को समझने लगे हैं और केश कटवाना आवश्यक नहीं मानते हैं।

खैर, मंगलदेव के मन में यह विचार उठ रहा था कि रामकिसुन ने तो सामाजिक मुद्दों को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। सामंती समाज के सड़े-गले रूपों से भिड़ते हुए कितनी बार मुँह-टूटे, मुकदमे झेले। इसलिए हो न हो, वही बात है– जैसे कोई बीमार देह, जिसे तरह-तरह की बीमारियाँ घेर लेती हैं, अचानक उभरकर सब अपने गुण-दोष प्रकट कर देती है, वैसे ही समाज भी कभी अचानक उठ खड़ा होता है। लेकिन यदि ऐसा हुआ, तो मृत-शरीर की बेइज़्ज़ती होगी! वैसे भी जब तक शरीर में चेतना रहती है, तभी तक इज़्ज़त-बेइज़्ज़ती का प्रश्न है, पर शव में वह बात कहाँ। यही कारण है कि कहीं शव फेंका भी जाता है और कहीं जला भी दिया जाता है।

अचानक मंगलदेव के मन में खयाल आया कि क्यों न सुबह में शव उठाने से पहले, पूरे परिवार के बीच एकमत विचार कर लिया जाए और काम को आगे बढ़ाया जाए, ताकि बीच में कोई विघ्न-बाधा न हो। आगे की क्रिया के लिए शुभ्र मार्ग भी साफ रहेगा।

सूर्योदय से पहले ही मंगलदेव ने अपने विचार वाले साथियों–यानी गाँव में एकविचारधारा वाले लोगों–को सूचना दी और स्वयं रामकिसुन के घर पहुँच गए। संयोग ऐसा हुआ कि पाँचों बहनों से उनकी भेंट हो गई और साथ ही जीवित रामकिसुन के विचार भी सबको याद आ गए। वे तो बहनों से साल में दो-तीन बार मिलने जाते ही थे और चर्चा में कहते थे कि मृत्यु के बाद धन का अपव्यय जो होता है, यदि वही किसी जीवित पर खर्च किया जाए तो उसका जीवन सँवर सकता है। यह सबकी जानकारी में था।

संयोग अच्छा रहा। शुभ-शुभ कर रामकिसुन का दाह-संस्कार सम्पन्न हो गया। ❑

दूसरा पड़ाव

मिथिलांचल के मध्य स्थित कमलपुर जितना प्राचीन गाँव है, उतना ही अपनी पहचान में प्रतिष्ठित भी है। इस प्रतिष्ठा का आधार किसी ऐतिहासिक आख्यान तक सीमित नहीं रहता। इसकी जड़ें भौगोलिक और प्राकृतिक संरचना में गहराई से जुड़ी हैं। यहाँ की मिट्टी उर्वर है, जो पीढ़ियों से कृषि को जीवन का आधार देती रही है। जलस्रोत दुर्लभ नहीं हैं। वे पाताल की गहराइयों में छिपे नहीं, बल्कि अपेक्षाकृत ऊपरी स्तर पर सुलभ हैं। यही कारण है कि कमलपुर का ग्रामीण जीवन श्रम, उत्पादन और आत्मनिर्भरता की सुदृढ़ परंपरा से विकसित हुआ है। पाताल के सात तल–अतल, बीतल, सुतल, तरातल, रसातल, महातल और पाताल–में से ऊपर के तल पर ही जल मिल जाता है। इसलिए खेत की सिंचाई के लिए बोरिंग आसानी से हो जाती है, और पीने के पानी के लिए चापाकल, पोखर और कुआँ भी सुलभ हैं। खेत-खलिहान समतल होने के कारण कमलपुर में उत्पादन भी बराबर है। जब अर्थ-उपार्जन के साधन सरल हों तो जीवन में भी सहजता और समतलता आ जाती है। यही समरूपता या समतलता किसी प्रतिष्ठित गाँव की पहचान होती है। इसी आधार पर कमलपुर मिथिला के प्रतिष्ठित गाँवों की श्रेणी में आता है।

हालाँकि, सोचने-समझने का दृष्टिकोण सबका अलग होता है, जिससे किसी एक ही वस्तु को लोग भिन्न-भिन्न रूप में देखते हैं। इसलिए प्रतिष्ठित गाँव मानने के और भी कारण बताए जाते हैं। कोई कहता है कि जहाँ बड़ी जाति, तथाकथित ऊँची जाति, की संख्या अधिक हो, वही गाँव प्रतिष्ठित है। कोई मानता है कि जहाँ पढ़े-लिखे

लोग अधिक हों, वह गाँव प्रतिष्ठित है। कोई सोचता है कि जहाँ धन-संपन्न लोग हों, वही गाँव प्रतिष्ठित है। परंतु साफ कहें तो गाँव वही है जिसमें भौगोलिक दृष्टि से सीमा-सरहद, घर-द्वार, रोड-सड़क, पोखर-कुआँ, खेत-खलिहान और बगीचे हों, और उस गाँव में जो सद्गुण विद्यमान हों, वही उसकी प्रतिष्ठा का मापदंड है।

खैर, जो भी हो, यहाँ चर्चा कमलपुर की है, तो कमलपुर की प्रतिष्ठा की अपनी क्या विशेषता है!

दर्जनों जातियों में बँटे समाज में कमलपुर ऐसा गाँव है जिसमें जीवन की आवश्यकता पूरी करने वाले सभी साधन मौजूद हैं। जैसे किसानों के बीच खेत हैं, वैसे ही खेती से जुड़ा हर तरह का खेतिहर भी है। जैसे केश काटने वाले नाई, कपड़ा धोने वाले धोबी, औजार बनाने वाले बढ़ई, बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले डोम, और मिट्टी के सामान गढ़ने वाले कुम्हार। साथ ही पढ़े-लिखे लोग हर जाति में हैं और प्रत्येक जाति में कुछ न कुछ संपन्न परिवार भी हैं। खेती का कारोबार मुख्य होने के बावजूद खास-खास जातियों के भीतर कुछ विशेष काम भी बँटे हुए हैं। जैसे गाय-भैंस पालने को कुछ जातियों का कार्य माना जाता है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि अन्य जातियाँ ऐसा नहीं करतीं। वे भी पशुपालन करती हैं। मछली पालन भी कुछ जातियों के बीच विशेष रूप से है, पर बाकी लोग भी अपने-अपने पोखर, डबरों और तालाबों में मछली पालते हैं। इसी तरह, खेती तो सब करते ही हैं। उपज के आधार पर कोइर और कुजरा भी खेतिहर कहलाते हैं।

गाँव का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह बहुसंख्य जातियों का गाँव है। साथ ही दर्जनों ऐसी जातियाँ हैं जो संख्या में एक-दूसरे के बराबर हैं, जिससे झगड़ा-झंझट कम होता है और पंचायत के माध्यम से विवादों का निपटारा अधिक होता है। यह पूछना स्वाभाविक है कि

फिर विवाद होता ही क्यों हैं। जब तक खेत-खलिहान में बाँट-झाँट और मेड़ बने रहेंगे, तब तक विवाद भी रहेंगे। कभी वर्षा से घुलकर मेड़ टूट जाते हैं, तो कभी बाढ़ से बह जाते हैं। अन्य समस्याएँ भी बनी रहती हैं।

पर गाँव की प्रतिष्ठा केवल उत्पादन से नहीं, बल्कि वैचारिक प्रतिष्ठा से भी होती है। कमलपुर का अंतर कई गाँवों से इसी कारण है। अन्य गाँवों में जहाँ एक ही राजनीतिक दल या एक ही धार्मिक सम्प्रदाय होता है, वहाँ कमलपुर में सभी दल और सभी सम्प्रदाय मौजूद हैं। यहाँ न केवल हर तरह का राजनीतिक दल है, बल्कि हर तरह का धार्मिक सम्प्रदाय भी है। हालाँकि इसका यह अर्थ नहीं कि जैसे दार्शनिक सम्प्रदाय अद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैत का भेद करते हैं, वैसे ही राजनीतिक दल भी महिला, दलित या महादलितों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे छीपदार हल अथवा करीन जैसे समाज के पालो जो कब टूट जाए, पता नहीं।

सम्प्रदाय वाले जीवन-मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, और राजनीतिक दल वाले भी यही कहते हैं। पर न तो सम्प्रदाय वाले पूछते हैं कि जब परिवार में ही कल्याण चाहते हैं, तो भाई-भाई में झगड़ा क्यों होता है; न ही राजनीतिक दल वाले पूछते हैं कि जब जीवन का मूल तत्व सबका सामूहिक अधिकार है, तो समाज गाड़ी विश्वास से क्यों नहीं चलती।

यही कारण है कि समाज का ढाँचा छीपदार-सा हो गया है–ऊपर से एक, भीतर से फाँकदार। एक ही गाँव में कबीरपंथी समर्थकों की विचारधारा और व्यवहार रमावति समर्थकों से विपरीत है। धनी लोग अपनी व्यक्तिगत संपत्ति के लोभ में भाग रहे हैं, तो अधिकांश लोग जीवन के लिए केवल उचित भोजन और आवश्यक साधन चाहते हैं। इसी से समाज की सामाजिकता का स्वरूप दिखता है। लेकिन

कमलपुर वालों को इससे कोई विशेष मतलब नहीं।

सन 1949 में रामकिसुन का जन्म ऐसे परिवार में हुआ, जिसका आर्थिक साधन मुख्य रूप से अन्न और पान की खेती, जो खास जाति का आधार भी है। जैसे सब्जी उगाने वाला अपने खेत को पहचान लेता है, वैसे ही पान उपजाने वाला भी पान के खेत को पहचान लेता है। ऐसे ही पहचानने वाले थे हीरालाल। पूर्वजों से मिले खेतों ने उन्हें परिवार चलाने का सहारा दिया था। परिवार चलाने का अर्थ था– उस काम में परिवार का श्रम लगना और उतनी ही आमदनी होना, जिससे समयानुकूल परिवार की स्थिति सँभल सके।

हीरालाल का जीवन मूलतः पान की खेती पर आश्रित था, हालाँकि उनके पास दस कट्ठा खेत और भी था, जिसमें अन्न की खेती भी करता था। देश नया-नया स्वतंत्र हुआ था, अंग्रेजों को लोग भगा चुके थे, इसलिए समाज में राजनीतिक चेतना भी धीरे-धीरे जागने लगी थी। पर समाज का जो सामंती ढाँचा था, वह उसी रूप में चल रहा था। एक ओर घर-घर बिना अन्न, बिना वस्त्र, बिना साधन के लोग त्राहिमाम कर रहे थे, तो दूसरी ओर वेश्याओं का नाच नहीं चल रहा था, ऐसी बात भी नहीं थीं। यही था गाँव का समाज।

कमलपुर गाँव राजदरभंगा के सीधे शासन के अधीन नहीं था, बल्कि राजपरिवार से जुड़े जमींदार परिवार के अधीन शासित था। इसीलिए यह एक मालिक का गाँव था। हर साल जमीन की नीलामी होती थी। यह समाज की पुरानी बीमारी थी, जिससे बँट-बँटकर जमीन खंडित होती रही और नीलामी पर चढ़कर गाँव-गाँव की खरीद-बिक्री होती रही। इससे नये-नये मालिक पैदा होते गए। आजादी के समय, यानी 1947 में, कमलपुर में चार मालिक आ चुके थे, जो गाँव से मालगुजारी वसूलते और खेती भी करते थे। चारों मालिकों ने चार जगह कचहरी बना ली थी और अपने-अपने खेत-खलिहान पर पट्टी

डालकर नियंत्रण कर रखा था। ऊँचे जीवन स्तर के सभी साधन उन्होंने अपने-अपने घरों में बना रखे थे।

मिथिलांचल के अन्य गाँवों से भिन्न, कमलपुरवालों का व्यवहार और समाज की चाल-ढाल भी अलग थी। मुख्य कारण यह था कि अन्य गाँवों में बाहर से मालिक आए थे–दूसरे जिलों या राज्यों से–और वहाँ अपनी मिल्कियत कायम की थी, जबकि कमलपुर में ऐसा नहीं हुआ। राजदरभंगा से बँटी हुई जमींदारी स्थानीय जमींदारों के हाथ आई। चारों मालिक क्षेत्रीय थे, जिससे भाषा-बोली, खेती-वारी, त्यौहार, विवाह आदि में एकरूपता बनी रही। यह बात दूसरे गाँवों में नहीं थी। बाहर से आए मालिक अपने साथ अपनी मातृभूमि की बोली-भाषा और व्यवहार भी ले आए, जिससे आज समाज में तरह-तरह की प्रथाएँ मिली-जुली दिखती हैं।

कमलपुर का सौभाग्य रहा कि अंग्रेजी शासन का सीधा दबाव इस गाँव पर नहीं पड़ा। हालाँकि यह कहना भी गलत होगा कि अंग्रेज बहादुर ने ग्रामीण इलाकों में पाँव नहीं पसारे। आसपास के मोतीपुर गाँव में नील की कोठी बनी थी और सैकड़ों बीघे खेतों में नील की खेती होती थी। पर यह अनोखी घटना रही कि देश स्वतंत्र होने से बहुत पहले, यानी 1947 से पहले ही, जब आजादी का आन्दोलन शुरू हुआ था, तब कमलपुरवालों ने नीलहे मालिकों को मार-पीटकर भगा दिया। बाद में नील का नया आविष्कार होने से नील की खेती को धक्का लगा।

सन 1935 के लखनऊ अधिवेशन में, यानी आजादी के आन्दोलन के दौरान, राजा-महाराजाओं और जमींदारों की जमींदारी के खिलाफ प्रस्ताव भी पारित हो चुका था। इससे उनकी मालगुजारी की शक्ति कम हुई और शासन में भी शिथिलता आई।

कमलपुर के प्रतिष्ठित गाँव बनने का कारण प्राकृतिक प्रभाव

भी है। मिथिला के गाँव दर्जनों नदियों और नालों के बीच बसे होते हैं। कोसी और कमला जैसी विनाशकारी नदियाँ भी हैं, जो हर साल मिट्टी धोकर बालू की मरुभूमि बना देती हैं। जो गाँव कभी जनक की फुलवारी की तरह फूल-फलों से लदे रहते थे, वही गाँव आज ऐसे हो गए हैं जहाँ अंडी के पेड़ की छाया में बैठकर लोग जेठ की धूप काटते हैं।

कमलपुर का सौभाग्य रहा कि चार कोस पश्चिम में नाचती कमला और चार कोस पूरब में उफनती कोसी से बचा रहा। बीच में यह गाँव स्थित है, जिसके पास केवल एक सुपेन (सुपर्णा) नामक नदी है, जो प्राचीन काल से बह रही है। न तो वह ढोढ़ साँप की तरह फुफकार कर गाँव को काटने वाली है और न ही विषहीन धामन की तरह ज़हरीली, जो हर साल प्रलयकारी रूप ले ले। हाँ, भादव में वह इतनी प्रबल हो जाती है कि बड़े-बड़े नाविक भी नाव पार करने में काँप जाते हैं। पर उसे विनाशकारी नहीं कही जा सकती।

आषाढ़ से आश्विन तक चार महीने वह उफनती है, फिर चार महीने पोखर बन जाती है यानी प्रवाह रुक जाता है, लोग खेतों को सिंचते हैं और बाकी चार महीने वह गाय-भैंसों का चारागाह बनी रहती है। जैसे वह गाँव की पूज्य नदी है, वैसे ही उस नदी का पूण्य गाँव कमलपुर है। पूज्य क्यों? क्योंकि वहीं मृतकों को जलाने-गाड़ने की जगह है। जहाँ मन हुआ, वहीं, कभी धारा के पेट में, कभी उसके किनारे। यदि नदी सूखी हो तो पेट में, यदि पानी हो तो तट पर, और यदि भादव का उफान हो तो धारा के प्रवाह में शव फेंक दिया जाता है। यह काम सुपेन नदी केवल एक गाँव में नहीं, बल्कि कई गाँव-समाजों में करती आई है, और यह आज की बात नहीं, बल्कि आदिकाल से होता आ रहा है।

सघन गाँव की सघन बस्ती होने के कारण जीवन की सबसे बड़ी

आवश्यकता– भोजन के साथ पानी की भी उतनी ही जरूरी है। वस्तुतः अन्न से अधिक महत्व पानी का है। अन्न के बिना मनुष्य महीनों जीवित रह सकता है, पर पानी के बिना तीन दिन भी पूरे नहीं कर सकता। हालाँकि पानी से भी अधिक आवश्यक है वायु, मगर वायु तो धरती से आकाश तक भरी है, इसलिए उसकी कमी लोगों को नहीं खलती।

एक गाँव में जितने भी टोले होते हैं, वे दरअसल छोटी-छोटी बस्तियाँ ही होती हैं। गाँव की भूमि की संरचना हर जगह एक जैसी नहीं होती। कहीं ऊँच-नीच है, कहीं खाड़ियाँ हैं। सामान्य समय में, यानी सुखाड़ के दिनों में, कहीं भी रहना सहज होता है, पर बरसात में यह संभव नहीं।

इक्कीस टोलों में विभक्त वस्तियो में कुछ ऐसे थे, जहाँ केवल एक ही जाति के लोग बसते थे, तो कुछ ऐसे भी जहाँ अनेक जातियों के लोग रहते थे। वे सब एक ही कुएँ का पानी पीते, एक ही पोखर में स्नान करते। इसलिए कहना होगा कि गाँव में कोई ऐसा पोखर या कुआँ नहीं था जिसमें पानी पीने या नहाने की रोक-टोक हो। हाँ, रोक का असर धर्म के आधार पर नहीं, बल्कि अर्थ के आधार पर था। एक ही जाति के भीतर भी जो आर्थिक रूप से कमजोर थे, यानी जो गरीब थे, उनके साथ पानी या आग में भेदभाव नहीं होता था, यह भी होता था।

कमलपुर में एक उपलब्धि और हुई। वह थी जलस्रोत का सरकारीकरण। देश की आजादी की शुरुआती उपलब्धियों में से एक थी– गाँव के खास तालाबों का सार्वजनिक संपत्ति में बदल जाना।

पान उपजाने वाले किसान हीरालाल ऐसे थे, जो सोलह कोरवास की बीस आँतर पान अपने हाथों से, मेहनत से उगाते थे। मगर भैयारी के बँटवारे और मध्यमवर्गीय स्थिति के कारण परिवार की

हालत अक्सर डगमगाती रहती थी। हीरालाल का परिवार धीरे-धीरे बड़ा होता गया, पर काम करने वाले सदस्य घटते चले गए। जातिगत दृष्टि से भी हीरालाल की पत्नी सुगिया अलग पहचान रखती थीं। जहाँ अन्य परिवारों की स्त्रियाँ पान की खेती का ढंग नहीं जानती थीं, वहीं सुगिया को हर बारीकी आती थी। यहाँ तक कि लोइट से पान की सिंचाई तक करती थीं।

लोइट एक बड़े घड़े जैसा पात्र होता था, जिसका मुँह साधारण घड़े से भिन्न, छोटा होता था। इसका कारण यह था कि उसे कंधे पर उठाकर बाएँ हाथ से पानी डालते और दाहिने हाथ की हथेली और अंगुलियों से धारा रोककर फुहारे की तरह पान की जड़ों तक सिंचाई करते। यही कारण था कि पान की खेती को भारी खेती कहा जाता था। क्योंकि जहाँ भी पान की वारी होती, वहाँ चारों ओर मोटे टाट और ऊपर से छप्पर डालकर उसे ढकना पड़ता था।

कमलपुर में 1947 में केवल एक लोअर प्राइमरी स्कूल था, जिसमें एक ही शिक्षक पूरे गाँव के बच्चों को पढ़ाते थे। दोनों पहर–सुबह और दोपहर–स्कूल चलता था। पाँच वर्ष बाद हीरालाल ने रामकिसुन का नाम स्कूल में लिखवा दिया। उस समय न तो आज की तरह महँगे विद्यालय थे, न प्रवेश शुल्क की बाध्यता। अभिभावक अपनी इच्छा से एक रुपया गुरुजी को प्रवेश शुल्क के रूप में दे देते थे।

गाँव के बीचों-बीच स्कूल होने से सभी बच्चे सहज ही पढ़ने पहुँच जाते थे। चार वर्ष बाद रामकिसुन ने गाँव का स्कूल पास किया और मिडिल स्कूल सिमरा में नाम लिखवाया। चौथी से सातवीं तक की पढ़ाई वहीं पूरी की। फिर चार वर्ष बाद मिडिल पास कर हाइ स्कूल तमुरिया में नाम लिखाया। अपने टोल से, यानी अपनी जाति के टोले से, रामकिसुन चौथे विद्यार्थी थे, जिन्होंने हाइ स्कूल में नाम लिखाया।

बाढ़, लू, शीतलहरी– ये सब तो मिथिलांचल की नियति रही है, केवल आज की नहीं, सदियों से। चारों कचहरियों के मालिकों से समाज के लोग भी अपनी उपज और व्यवसाय से जुड़े थे। कुछ बटाईदार के रूप में, तो कुछ अपने रोज़गार के रूप में। हीरालाल भी एक मालिक की कचहरी से जुड़ गए थे। साल भर पान की खेती से होने वाले खर्च की भरपाई वे मालिक को करते और बदले में उन्हें पाँच कट्ठा खेत पान की वारी के लिए मिलता। मालिक की कचहरी में समाज के कुछ लोग आना-जाना करते, और अपने काम को सहयोग मानते।

सन 1962 में मिथिलांचल में भारी शीतलहरी पड़ी। ऐसी शीतलहर कि किसानी जीवन जैसे मर गया। इलाके से गिद्ध, तुलसी और कोबरा साँप तक गायब हो गया। छह परिवारों की बस्ती– कमलपुर, यानी पान की खेती करने वाले छह परिवारों में सबका पान गल गया। केवल हीरालाल की बीस आँतर की वारी का पान बचा रह गया। उस समय न तो बाहर से कलकत्ता का पान आता था, न समाज में पान का इतना अधिक उपभोग होता था। केवल खास अवसरों– श्राद्ध, विवाह, पूजा आदि–में सामूहिक रूप से पान का वितरण होता था, जिससे कुछ विशेष खर्च होता था।

पान की खेती से ही हीरालाल का जीवन चल रहा था। हालात ऐसे बने कि जो खर्च पान पर होता, वही पान पूरा करता। पिछले वर्ष, जो पान एक-डेढ़ रुपये ढोली बिकता था, वह अभाव के कारण साठ-पैंसठ रुपये ढोली हो गया। इससे हीरालाल को अच्छी आमदनी हुई। कचहरी की लगान भी वे चुकाते रहे और प्राप्त धन का उपयोग खेत खरीदने में किया। लगभग ढाई बीघा जमीन उन्होंने पान की कमाई से खरीद ली।

1966 में रामकिसुन ने तमुरिया हाई स्कूल से सेकेंड डिवीजन

से मैट्रिक पास किया। हालाँकि जनता कॉलेज, झंझारपुर खुल चुका था और कमलपुर के विद्यार्थी भी वहाँ पढ़ने जाते थे, पर रामकिसुन को आगे पढ़ने का न तो विचार था और न ही अभिभावकों का। इसलिए वे आगे न बढ़ सके। इससे पहले उनके टोल से तीन युवक आगे निकले थे। उनमें से दो मैट्रिक में असफल रहे और एक मैट्रिक पास कर घोघरडीहा आई.टी.आई. कॉलेज में बढ़ईगिरी की ट्रेनिंग लेने चला गया। असफल होने वालों में से एक ने भी बढ़ईगिरी की ट्रेनिंग ली। उस समय समाज नौकरी-प्रधान नहीं बना था। लोग अपनी जीविका खेत-खलिहान या छोटे-मोटे रोज़गार से चलाते थे।

हीरालाल को 1962 की आमदनी याद थी, इसलिए उन्होंने खेती–यानी पान की वारी–को ही जीविका का आधार मान लिया। ढाई बीघा जमीन बढ़ जाने से जीवन में और भी उम्मीदें जाग गईं। पान की कीमत भी बाद में बढ़ी। इसका कारण था कि पड़ोस के गाँवों में पान की खेती नष्ट हो गई। पान की खेती एकमौसमी नहीं होती, जो चार महीने में फल दे दे। उसे पकने में दो साल लगते हैं और कई साल तक वह बनी रहती है।

1967 में रामकिसुन, मंगलदेव के साथी बनकर साम्यवादी दल की सदस्यता ग्रहण किए। इससे पहले भी कमलपुर में साम्यवादी दल का गठन हुआ था, पर एक आगजनी की घटना में फँसकर वह ध्वस्त हो चुका था। पार्टी की छोटी टुकड़ी समाज में उठ खड़ी हुई थी, मगर उसी घटना में तहस-नहस हो गई। पाँच लोगों को जिला न्यायालय से दस-दस वर्ष की सजा हुई। घटना क्या थी, यह फिलहाल नहीं?

सदस्य बनने के बाद रामकिसुन ने ईमानदारी से पार्टी के कार्यक्रमों में भाग लेना शुरू किया। साथ ही अपने किसानी जीवन में समय बिताते रहे। 1967 में भोगेन्द्रजी सांसद बने। उनके भाषण से रामकिसुन बहुत प्रभावित हुए। उनके मन में यह बैठ गया कि संगठन

के साथ पार्टी की विचारधारा गाँव में दौड़ती रहनी चाहिए। पूरी तरह नहीं, पर धीरे-धीरे वे उसमें रम गए। उन्होंने युवकों का संगठन बनाने में भरपूर समय दिया।

संयोग ऐसा हुआ कि 1969 में कमलपुर गाँव में दुर्गापूजा करने का विचार उठा। उस समय तक रामकिसुन पार्टी के जवाबदेह कार्यकर्ता बन चुके थे। गाँव के मध्य विद्यालय के प्रांगण में पंचायत हुई। सर्वसम्मति से तय हुआ कि विद्यालय के प्रांगण में ही दुर्गापूजा होगी। मंदिर न होने के कारण मूर्ति की स्थापना वहीं होगी। आसपास के कई गाँवों में विद्यालय में ही दुर्गापूजा होती थी। सभा में लगभग सभी टोल के लोग उपस्थित थे।

आश्विन का मास चढ़ चुका था। पूजा का समय नजदीक था। तब मधेपुर प्रखंड (लखनौर प्रखंड उस समय नहीं बना था) में अट्ठाइस पंचायतें थीं, जो पूर्व में कोसी और पश्चिम में कमला तक फैली थीं। प्रखंड प्रमुख कमलपुर के ही निवासी थे। उनका विचार था कि पूजा बड़की पोखर के उत्तरी महार में हो, जो गाँव से भी जुड़ा हो और उनके घर के पास भी। सभा के दूसरे दिन ही प्रमुख ने उसी स्थान से पूजा की मिट्टी उठा ली। इससे गाँव में भारी प्रतिक्रिया हुई। व्यवस्था सामंती ढाँचे में बँधी थी।

गाँव के कुछ युवक, जिनमें रामकिसुन भी थे, विद्यालय प्रांगण में पूजा कराने पर अडिग रहे। हीरालाल ने भी सभा में खुलकर घोषणा की-

"अगर समाज के सब लोग उधर चले जाएँ, प्रमुखजी के लिए चुने गए स्थान पर, तो भी हीरालाल कहता है कि मेरे पास विद्यालय के बगल में दक्षिणी महार में एक कट्ठा जमीन है, जिसमें तीन आम के पेड़ हैं। उन्हीं में बीच वाले पेड़ पर कागज की तस्वीर काँटी से ठोक दूँगा और अकेले ही पूजा करता रहूँगा, जब तक जीऊँगा।"

इस कारण सन 1969 में एक ही गाँव में दो जगह दुर्गापूजा शुरू हुई। जैसा कहते हैं– 'लूट में चरखा नफा' वैसा ही हुआ। फर्क इतना रहा कि जहाँ दूसरे गाँवों और मंदिरों में बली दी जाती थी, कमलपुर में उसका विरोध हुआ। धर्म-सम्प्रदाय के समर्थक लोग गाँव में थे ही, जो बली के विरोध में रहे। विद्यालय के प्रांगण में शुरू हुई पूजा में सर्वसम्मति से बली का विरोध हुआ। जब एक स्थान पर बली का विरोध हुआ तो प्रमुख भी बाध्य होकर विरोध में शामिल हो गए। यही है जनशक्ति का प्रभाव।

गाँव में कुछ गिने-चुने लोग खुले रूप से विद्यालय सभा के निर्णय पर टिके रहे। बाकी समाज में मतभेद उभर आए। नतीजा यह हुआ कि पूजा स्थल का समर्थन करने वाले कम रहे और विरोधी अधिक। विचारधाराओं में तनातनी भी होने लगी।

पूजा की दौर शुरू हुई। और यह पहली बार था कि गाँव के अधिकांश लोग, यानी दो-चार आदमी ही नहीं, बल्कि टोले-टोले के लोग भी, एकत्र होकर इसे सामाजिक काम मानकर राय-विचार करने लगे। दस दिन की दुर्गापूजा का अर्थ था अधिक खर्च। इसलिए जनसहयोग आवश्यक था। चन्दा उगाही से लेकर मूर्ति स्थापना और पूजा-स्थल की सजावट तक की व्यवस्था करनी थी।

चर्चा का मुद्दा पूजा स्थल पर भी केंद्रित हो गया। कौन-सा पक्ष सही है और कौन-सा गलत– इससे अधिक यह प्रश्न उठा कि दस दिन की पूजा में स्त्रियाँ, बच्चे और पुरूष सब शामिल होंगे, तो विद्यालय प्रांगण अधिक सुरक्षित स्थान है, बड़की पोखर नहीं। पहले से ही समाज में यह मान्यता थी कि पूजा या यज्ञ का प्रसाद लेने अवश्य जाना चाहिए। दिन-रात की पूजा के बाद प्रसाद वितरण होता ही है। यहाँ तक कि यह धारणा भी थी कि दुश्मन भी अगर यज्ञ का निमंत्रण दे तो उसमें जाना चाहिए। मनुष्यों के बीच झगड़ा या मनमुटाव हो

सकता है, पर देवी-देवता क्यों बीच में आएँ?

मूर्ति बनने के बाद लोगों की आवाजाही दोनों स्थलों पर शुरू हो गई। बड़की पोखर के उत्तरी महार के स्थल पर लोग सोच-विचार कर जाते, पर विद्यालय स्थल पर बिना सोचे-समझे भी घूम आते। समूह के रूप में लोगों का झुकाव विद्यालय की ओर बढ़ने लगा। कार्यकर्ता जुटाने और चन्दा उगाही के मामले में भी विद्यालय प्रांगण को समर्थन अधिक मिला, बड़की पोखर को कम। एक कारण यह भी था कि कुछ खास परिवारों ने पोखर के स्थल पर कब्ज़ा जमा लिया, जबकि विद्यालय स्थल ऐसा नहीं था।

धीरे-धीरे यह भाव बनने लगा कि देवी-देवता किसी एक के नहीं, सबके हैं। इसलिए संध्या के समय दीप जलाने और सुबह फूल अर्पित करने लोग दोनों स्थानों पर जाते। पूजा-स्थल को रोज़ सजाना-सँवारना भी जरूरी हो गया। बच्चों की उत्सुकता से तो नित्य नए विचार और नूतन कार्य सामने आने लगे।

कुछ लोगों के दबे विचार कर्मरूप में जागे। चाय-पान, झिल्ली, कचड़ी जैसे छोटे कारोबार उभरने लगे। दुखनी माई ने भैंट के लावा का ठेला लगाने का विचार किया। भूलिया और चुल्हिया ने रामदाना बेचने का। किसी ने सोचा कि उपवास करने वालों के लिए फलहार चाहिए– जिन्हें फल नहीं मिलता, उनके लिए ऊबला हुआ अल्हुआ और सुथनी का प्रसाद भी चल सकता है।

इक्कीस टोले के गाँव में मंगलदेव और रामकिसुन को ऐसे दस आदमी नहीं मिले जो दिल खोलकर पूजा की सेवा में जुट जाते। कुछ लोग टाल-मटोल करते रहे, पर जब पाँच-सात लोगों का समूह किसी टोल में चन्दा लेने पहुँचता, तो वहाँ के कुछ लोग भी साथ जुड़ जाते। एक विशेष बात यह रही कि पूजा स्थल पर आने-जाने में पुरुष-नारी दोनों की संख्या लगातार बढ़ने लगी। स्थल का महत्व, किसी धर्मशाला

से भी अधिक हो गया। जहाँ धनी थे वहाँ धर्मशाला बनती थी, पर जहाँ नहीं है, वहाँ वृक्ष की छाया ही आश्रय बनती थी।

सन 1969 तक कमलपुर समाज में न तो राजनीतिक चेतना जागी थी और न ही व्यवस्थित ढंग से व्यवस्था सँभालने की शक्ति। झूठ बोलना पाप माना जाता था, पर कौन कह सकता था कि गाँव में झूठ नहीं बोला जाता। किसी की मजबूरी होती, किसी की लाचारी। झूठ अब आधा विचार नहीं, बल्कि चतुराई का पर्याय मान लिया गया था। धर्म की तरह झूठ जीवन की नस-नस में समा गया था। यही कारण है कि सत्य और असत्य को पहचानना कठिन हो गया। आज का सत्य कल झूठ हो जाता और कल का सत्य आज झूठ बन जाता। यह केवल बोलचाल की बात नहीं, बल्कि धरती, खेत, नदी, समुद्र और पहाड़ों की तरह हर क्षेत्र में दिखाई देने वाला यथार्थ था।

गाँव में दुर्गापूजा का कलश-स्थापित होते ही वातावरण में नरमी और गरमी दोनों आ गए। यह स्वाभाविक भी था। पंचमी तक पूजा में कोई बड़ी भीड़ नहीं जुटती, पर छठे दिन से, यानी बेलनौती से, पूजा की प्रक्रिया तेज हो जाती। क्रिया-कलाप बढ़ने से नए उत्साह का संचार भी होता।

पंचमी के दिन पूरे गाँव में हल्ला मच गया कि बेलनौती पर बड़की पोखर के उत्तरी महार के दुर्गास्थान पर हाथी आएगा। विद्यालय स्थान के विचारधारा वाले कार्यकर्ताओं के मन में प्रश्न उठा कि पूजा मनुष्य करता है या हाथी-घोड़ा। जिसको मन होता है वह अपने हाथों से लगाए बम्बई आम का भोग करता है और जिसे मन होता है वह मांस-मछली का भोग करता है। किसी पर रोक कहाँ है। दुर्गा-भगवती ने स्वयं निर्णय ले लिया है कि हम दोनों जगह रहेंगे। संत-महात्मा मधुर भोग करने वाले हों या छागर-बली देने वाले, सभी के साथ रहेंगे। इच्छा तो अपनी-अपनी, अर्जी तो अपनी-अपनी।

दूसरी संध्या, यानी पंचमी की रात, मंगलदेव और रामकिसुन बैठकर सोचने लगे कि यह हाथी आखिर आ कैसे रहा है। किराये का है या सहयोग से। किराये पर तो सब कुछ मिल ही जाता है। पर बात सामने आई कि यह पंचायत के मुखिया का हाथी है। मुखिया का नाम सुनते ही मंगलदेव के मन में जैसे बिजली कौंध गई। उनका संशय यही था कि अब तक वे दोनों–मंगलदेव और रामकिसुन–समझते थे कि पूजा कमलपुर समाज की है, समाज की अपनी। लेकिन इसमें बाहर के समाज की भागीदारी किस रूप में है? मंगलदेव ने कहा-

“रामकिसुन, यह गाँव का प्रश्न है। गाँव पहले ही वैचारिक खिंचाव में पड़ चुका है। इसलिए हाथी के प्रश्न पर चुप रहना ही उचित होगा।”

रामकिसुन जवान थे, पीठ पीछे पिता और टोले के लोग थे। उत्साह उस में कहीं अधिक था। बोले-

“रणभूमि में चाहे पिता ही क्यों न हों, लेकिन सामने अगर वे खड़े हों तो सामना करना ही होगा।”

निर्णय पर पहुँचे ही नहीं थे कि राधेश्याम आकर बोला-

“कल वृद्धावस्था पेंशन का कैम्प गाँव में लगेगा।”

रामकिसुन ने पूछा-

“कहाँ लगेगा कैम्प?”

राधेश्याम बोला-

“बड़की पोखर के महार के दुर्गास्थान पर।”

रामकिसुन ने फिर पूछा-

“कौन-कौन आएगा?”

राधेश्याम बोला- “बी.डी.ओ. साहब पूरा ब्लॉक स्टाफ के साथ आएँगे। वहीं हाथों-हाथ पेंशन की मंजूरी होगी।”

रामकिसुन बोला-

“हम लोगों को वृद्धा पेंशन से क्या लेना। चालीस साल के बाद ही नंबर आएगा। अभी के बूढ़े-बुजुर्ग ही कहेंगे कि साठ साल की उम्र का फल कितना मिलेगा। देखना है कि चाय-पान चलता है या नहीं।”

षष्ठी की सुबह यानी बेलनौती के दिन गाँव में चहल-पहल शुरू हो गई। एक ओर बेलनौती का उत्साह, दूसरी ओर पेंशन-कैम्प का उत्साह। समाज के बीच विचित्र स्थिति बन गई। एक ओर संविधान के अधिकार का प्रश्न, दूसरी ओर दुर्गा-भगवती की बेलनौती। दोनों पूजा समितियों का दृष्टिकोण भी अलग था। बड़की पोखर की पूजा समिति का दृष्टिकोण यह था कि अधिक से अधिक शक्ति का प्रदर्शन हो, ताकि समाज में दबदबा बना रहे। वहीं विद्यालय की पूजा समिति का दृष्टिकोण था कि समाज के अधिक से अधिक लोगों को पूजा के माध्यम से शक्ति से जोड़ा जाए। इस तरह दोनों समितियों के बीच कार्यशैली अलग-अलग हो गई।

बड़की पोखर की पूजा को सहयोग प्रशासनिक तंत्र से लेकर राजनीति तंत्र तक और इलाके के सुखी-संपन्न लोगों से भी मिला। शुरू से ही, जब मूर्ति की मिट्टी ली गई, उसी समय से जातीय रंग चढ़ाने की कोशिश की गई। पर वह प्रयास उलटा पड़ गया। कारण भी कई थे, लेकिन दो कारण प्रमुख रहे। पहला यह कि बड़की पोखर की पूजा समाज की बड़ी जाति की समझी जाने लगी और विद्यालय स्थान की पूजा छोटी जाति की। जबकि सच्चाई यह थी कि गाँव के दो टोले अलग-अलग जातीयता वाले थे। एक टोले का सहयोग विद्यालय की पूजा को मिला और दूसरे टोले का सहयोग पोखर की पूजा को।

अब तक समाज में जो बड़ी जाति की रूपरेखा बनी रही, उसने भीतर ही भीतर विभाजन की रेखा खींच दी थी। विभाजन की यह रेखा इसलिए गहरी थी कि कुछ परिवार स्वयं को जाति में श्रेष्ठ वंश

का मानते थे और बाकी को निम्न समझते थे। इसी कारण न तो सब मिलकर एक स्थान पर खाते-पीते थे, न ही एक साथ विवाह-त्यौहार मनाते थे।

निम्न वंश वाले परिवारों में भी जो पढ़े-लिखे लोग थे–उस समय संस्कृत पढ़े पण्डित लोग–उन्हें समाज में सम्मान भले मिलता रहा हो, पर सामाजिक शक्ति में कोई स्थान नहीं मिला। वैसे ही जो परिवार राजनीति से जुड़े थे, खासकर वे जो स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में सक्रिय थे, उन्होंने भी भोजन और मेल-जोल की परंपरा में अनेक ठोकरें खाई थीं।

दरअसल जातीय समाज में जो अन्तर शुरू में था, वही वैचारिक संघर्ष के रूप में बार-बार उठता रहा। कुछ संघर्ष मिटते थे, तो कुछ वैसा ही बने रहते थे– जैसे खेत में कहीं दमकल-बोरिंग का पानी पहुँच जाता है और कहीं नहीं पहुँच पाता। यही हाल समाज में था। उच्च जाति के लोग निम्न जाति के यहाँ चूड़ा-दही खा लेते थे और निम्न जाति के लोग उच्च जाति के यहाँ भात-दाल।

कमलपुर के ही बचनू मिश्र, जिन्हें लोग गाँधीजी कहने लगे थे, 1934 के भूकम्प के समय राहत बाँटने में अपनी ईमानदारी के कारण वैचारिकी अगुआई किए। उसी समय खान-पान का एक नया समाज बन गया। पर दूरी बनी रही। वह दूरी यह थी कि भात-दाल खाने की परंपरा नहीं बनी, मामला चूड़ा-दही और पूड़ी-तरकारी पर अटक गया। बचनू मिश्र स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों को भगाने वाले सिपाही थे, बाद में राजनीति में सक्रिय हुए। पूजा-स्थान की विषमता को ही उन्होंने 1969 में फिर मुद्दा बनाया, वैसा ही प्रभाव पैदा किया जैसा 1934 में किया था। किसान सभा के सदस्य वे जीवन में एक ही बार बने, पर उसी से नेता की पहचान बना ली। अंतिम समय में भी उन्हें मार सहनी पड़ी। गोली भले नहीं खाई, पर मौत वही मार खाकर आई।

यह मत मानिए कि केवल उच्च जाति में ऊँच-नीच की समस्या थी और निम्न जातियों में नहीं। वहाँ भी थी। कमलपुर जैसे गाँव में दुर्गापूजा के आगमन के साथ ही अलग-अलग जातियों में खान-पान के झगड़े शुरू हुए, जो आज तक चले आ रहे हैं।

विद्यालय स्थान की दुर्गापूजा को बल मिलने का एक और कारण था। उसके सटे विष्णुपुर गाँव में उच्च जाति के एक संस्कृतज्ञ पण्डित रहते थे। पर समाज में उन्हें कोई पूछता नहीं था। वे गाँव छोड़कर कानपुर चले गए। वहाँ उन्हें अच्छी कमाई और सम्मान मिला। बच्चों को पढ़ाया-लिखाया और परिवार के सदस्य प्रशासनिक पदों तक पहुँचे। लेकिन साठ साल की उम्र के बाद मन फिर गाँव की माटी-पानी की ओर खिंच आया। वे सब छोड़कर गाँव लौटे। पर वही समाज जिसने जीवन भर उन्हें नहीं पूछा, वृद्धावस्था में तिरस्कार ही करता रहा। कहता-

“जब देह में ताकत थी तब बाहर चले गए और मरने के समय गाँव लौटकर समाज को भोज खिलाएँगे?”

कमलपुर के विद्यालय-स्थान की दुर्गापूजा में उन्हीं विष्णुपुर पण्डितजी का सहयोग मिला। शास्त्र-पुराण की शिक्षा उन्होंने कमलपुर और विष्णुपुर दोनों गाँवों में बाँटी। जिस दबाव को उन्होंने जीवन भर सहा था, अब उसी का प्रतिरोध उनके भीतर से उमड़ा। उनके सहयोग से दोनों गाँवों की वैचारिक दूरी घट गई। दिन-रात, सुबह-शाम जैसे मिट गए और पड़ोस-सा अपनापन बढ़ गया। सच है, समाज की दूरी केवल विचार से ही कम होती है। वही कमलपुर और विष्णुपुर के बीच हुआ।

अब तक जो विवाह और कुटुम्ब सम्बन्ध उच्च जातियों के बीच नहीं होते थे, वे शुरू हुए। हालाँकि परिवेश बदल चुका था और गाड़ी-सवारी के चलते दूरियाँ और भी घट गई थीं।

भगवती का डिम्हा पड़ते ही पूजा में गहमागहमी बढ़ी। षष्ठी तक पूजा की विधि-व्यवस्था बढ़ती रही और सप्तमी से मेले की शुरुआत हो गई। पहली बार कमलपुर में दुर्गापूजा हुई थी, इसलिए बाहर नौकरी करने वाले भी परिवार सहित गाँव लौट आए। समाज के सभी लोगों ने अपने-अपने कुटुम्ब और परिवार को आमंत्रण दिया। इलाके में जब कहीं पूजा होती है तो पड़ोसी गाँव का तन-मन से सहयोग करना धर्म माना जाता है।

कमलपुर के दोनों पूजा स्थलों में मेले का स्पष्ट अन्तर दिखने लगा। दर्शक लोग दोनों जगह जाकर भगवती की आराधना करते। पर दर्शक, आखिर दर्शक ही रहे। उन्हें आराधना से अधिक मेले का रस खींचता रहा।

विद्यालय के स्थान पर पूजा पूरे समाज के सहयोग से शुरू हुई थी, इसलिए वहाँ सामाजिकता का रंग अधिक था। विद्यालय की दुर्गा मेला समिति ने बाहर से आए व्यापारियों को न तो बुलाया और न ही रोका। यानी न किसी को मना किया न किसी से आग्रह। समाज के भीतर जो शक्ति जाग उठी थी, उसी के अनुकूल गाँव के नवयुवकों ने मनोरंजन के लिए नाटक खेलने की योजना बनाई और उसकी व्यवस्था भी कर ली।

उधर बड़की पोखर के उत्तरी दुर्गास्थान पर आर्थिक समृद्धि के सहारे तरह-तरह के मनोरंजन का आयोजन हुआ। खर्च की कोई समस्या वहाँ न थी, जबकि विद्यालय स्थान की पूजा लगातार आर्थिक अभाव से जूझ रही थी। पर जब शक्ति की आराधना दुर्गापूजा है, तो समाज में कितनी शक्तियाँ पूजनीय हैं, यह भी समाज को देखना ही पड़ता है। जो हुआ, उसे भविष्य का विधान समझना चाहिए।

बड़की पोखर के उत्तरी स्थल पर आसपास के बाजारों से व्यापारियों को बुलाया गया। दुकानों की बढ़ोतरी से मेले का रूप-रंग

और बढ़ा। जो भी दर्शक पूजा देखने आता, वह दोनों स्थानों पर जाकर भगवती के दर्शन करता।

दरअसल विद्यालय का स्थल भी बड़की पोखर के दक्षिणी महार में ही था। वही पोखर, जिसमें आज भी जितने कमल खिलते हैं, उतना और कहीं नहीं। गाँव का नाम भी इसी से कमलपुर पड़ा। पहले साल की पूजा में संयोग ऐसा बना कि एक छलगोरिया मूर्तिकार गाँव में आ पहुँचा। विचार-विमर्श के बाद उसने मूर्ति बनानी शुरू की। संयोग से उसने ऐसी सुन्दर मूर्ति बनाई कि सभी दर्शकों के मुख से एक स्वर में 'धन्यवाद' निकल पड़ा।

रौनकदार मेला भले उस स्थान पर न हुआ हो, पर दर्शकों की भीड़ से गाँव गनगना उठा। सप्तमी से दशमी तक लगातार तीन दिन गाँव की गलियाँ दर्शकों के आवागमन से भरी रहीं। इसी बीच, उत्तरी ओर के स्थल पर कुछ असामाजिक घटनाएँ भी घट गईं, जो दक्षिणी ओर के स्थल पर नहीं हुईं। विद्यालय गाँव के बीचोबीच था; वहाँ चौराहे से आने वाले दर्शक, इक्कीसों टोले के बच्चे-बूढ़े और स्त्री-पुरुष मिलकर रास्ते ऐसे भर देते थे कि कोई भी अराजक तत्व गलती करने की हिम्मत न कर पाता।

बीच-बीच में झूठ-सच की मिलान पर झगड़े की कोशिशें भी हुईं। कुछ लोग, जो दोनों पक्षों में विवाद भड़काना चाहते थे, खुद झूठे साबित हो गए। अगर पूजा से इतना भी मिला तो यह भी कम न था।

रंग-बिरंगे कार्य और विचारों से लोग इतने उलझ गए कि अपने दु:ख भी भूल बैठे। लेकिन मन-ही-मन उन्हें व्यवस्थित करते हुए, बाहर से आए दर्शकों की भीड़ को सँभालने में सब जुट गए। हज़ारों-हज़ार लोगों का भार उठाकर भी पूजा का समापन निश्चिन्तता से हो गया।

पूजा सम्पन्न हुई, पर वैचारिक मतभेद ऐसे जग उठे कि जगह-जगह गाली-गलौज और मारपीट होने लगी। जैसे बाढ़ का पानी बाग-

बगीचे के पपीते और अनार को सुखा देता है, वैसे ही दुर्गापूजा विसर्जन के बाद गाँव में झूठ बोलने वालों की बाढ़ आ गई। समाज में झूठ और सच को पहचानने वाले पहले भी कम थे, अब वे बरसाती झाड़ियों की तरह उगने लगे। कहीं अकटामिसिया की बेल, कहीं ताड़, नारियल और बेल के पेड़ की तरह नई प्रवृत्तियाँ। ऐसे पेड़ तो मंगलदेव के मन के खेत में भी उग आए।

कमलपुर के पश्चिमी गाँव रतनपुर में सिंहेश्वर नाम का एक सम्पन्न परिवार था। सिंहेश्वर के पूर्वज तीन पीढ़ियों से वहाँ मास-मालिक रहे थे। मास-मालिक यानी वह जमींदार जो अपने गाँव में मालगुजारी वसूल करता और यदि उसकी जमीन किसी दूसरे गाँव में होती तो वहाँ भी उसका अधिकार चलता। सामान्य परिवारों में आमदनी बढ़ने से खर्च की आदत बढ़ती है, और जहाँ वंशगत आमदनी हो, वहाँ यह प्रवृत्ति और भी बढ़ती है। फलतः मन भी बड़ा हो जाता है और मन के बड़े होने का मतलब है दूसरों को सदा कुदृष्टि से देखना।

मंगलदेव मध्यम जाति के मध्यम श्रेणी के, गाँव की दृष्टि से, वह नवयुवक था जो कॉलेज का चार साल का जीवन बिताकर पाँचवें साल में प्रवेश कर चुका था। तभी गाँव में दुर्गापूजा शुरू हुई थी। अपने घर से निकलकर मंगलदेव दक्षिण की ओर, अपने खेत का काम करने जा रहा था। दक्षिण से सिंहेश्वर चार-पाँच आदमियों के साथ उत्तर की ओर आ रहा था।

घर से थोड़ा आगे बढ़ते ही मंगलदेव ने सिंहेश्वर को देखा और अपने बारे में सिंहेश्वर के मुँह से सुनी झूठी बात को सीधे उसी से पूछ बैठा। छक्का-पंजा करनेवाला और फैलानेवाला सिंहेश्वर था ही। बड़बोले लोग समाज में आज ही नहीं, हमेशा से रहे हैं। सिंहेश्वर ने रौबदार अंदाज़ में जवाब दिया। जवाब सुनकर मंगलदेव ने भी अपने

रूतबे का परिचय देते हुए झपटकर सिंहेश्वर के हाथ की गट्टा पकड़ ली। जो हुआ, सो हुआ– वह बीते दिन की बात रही।

दुर्गापूजा के बाद समाज में एक और प्रश्न उठा। वह उठा चन्दा उगाही को लेकर। विद्यालय के दुर्गास्थान का हिसाब-किताब विसर्जन के कुछ दिन बाद ही साफ कर दिया गया। समिति के आठ कार्यकर्ता पहले ही अंदाजा लगा चुके थे कि चन्दा कम मिलेगा। इसलिए उन्होंने सोचा कि विधिवत पूजा कर ली जाए, लेकिन खर्च इतना अधिक न हो कि भारी बोझ बन जाए। जहाँ परंपरा रही है कि पान न हो तो पान के डंठल से भी पूजा होती है, तो फिर क्यों भारी बोझ लिया जाए। जब काम सहज रूप से हो सकता है तो बोझ उठाने का प्रश्न ही क्यों? आठों कार्यकर्ताओं पर तीस-तीस रुपये का अतिरिक्त भार पड़ा और साल की पूजा समाप्त हो गई।

दूसरी ओर, बड़की पोखर के उत्तरी महार के दुर्गास्थान की पूजा समिति में चन्दा उगाही को लेकर विवाद हो गया। विवाद का कारण था कि आधे से अधिक चन्दा वसूलनेवाले ने अपने पास ही रख लिया। सभा में तय हुआ कि अमुक दिन सब अपना-अपना हिसाब देंगे।

समय बनता गया, पर न सभा हुई न हिसाब साफ किया गया। न होने का कारण यह भी था कि अधिकांश सदस्य पर वैसे ही आरोप लगे थे। सभा न होते-होते इतना तो हो ही गया कि सब लोग आपस में एक-दूसरे पर आरोप लगाते रहे और समाज में किए गए सभी कामों की साख बिगड़ गई। मन-ही-मन सबने यह मान लिया कि भगवती के नाम पर जो खा लिया वह दोषी ठहराया जाएगा।

समाज के बीच, यानी कमलपुर के ग्रामीणों के बीच, दो तरह की विचारधारा का जन्म हुआ। विद्यालय के दुर्गास्थान के समर्थकों के बीच दुर्गापूजा 'पूजा' के रूप में रही, वहीं उत्तरी महार के दुर्गास्थान के समर्थकों के बीच दुर्गापूजा व्यापार के रूप में पकड़ ली गई। और वही

जोड़ आज तक बना हुआ है।

पूजा को होते पचासवाँ वर्ष हो चुका है। समाज का रूप-रंग बहुत कुछ बदल गया है। पहले बैच के जो कार्यकर्ता थे, कुछ अब मर चुके हैं और कुछ वृद्ध होकर नई पीढ़ी को भार सौंप चुके हैं। आज के परिवेश में दोनों स्थानों की दुर्गापूजा ऊपरी-ऊपरी रह गई है। अलग-अलग तरह की पूजा और अन्य सार्वजनिक कार्य बढ़ने से अब तक की दुर्गापूजा के इतिहास में भी बदलाव आ ही गया है। ❑

तीसरा पड़ाव

सन उन्नीस सौ इकहत्तर (1971) में मंगलदेव भी कॉलेज से निकल चुके थे। वैसे भी कॉलेजों की स्थिति ऐसी हो गई थी कि परीक्षाएँ तीन-तीन और चार-चार साल तक विलम्ब से होने लगी थीं। कुछ कॉलेजों में तो खुलेआम नकल भी शुरू हो गई थी और कुछ में नहीं। इसी असमानता को दूर करने के लिए छात्रों के बीच धरना-प्रदर्शन भी चल रहा था।

उसी समय पाकिस्तान में चुनाव हुआ, जिसमें पूर्वी पाकिस्तान–जो अब बांग्लादेश के नाम से जाना जाता है–में मुजीबुर रहमान की पार्टी बहुमत में आई। तब तक पश्चिमी पाकिस्तान का शासन पूर्वी पाकिस्तान पर रहा। जबर्दस्त लड़ाई छिड़ गई। एक देश में लड़ाई होने पर अन्य देश उसमें साझेदार हो ही जाते हैं। मुजीबुर रहमान के साथ भारत खड़ा हुआ– उस समय इन्दिरा गाँधी प्रधानमंत्री थीं। अमेरिका पाकिस्तान के पक्ष में उतर आया। वहीं सोवियत संघ, जो दुनिया के नक्शे पर शक्ति के रूप में उभर चुका था, बांग्लादेश के पक्ष में खड़ा हुआ।

सन 1971 तक भारत में अन्न का अभाव बना ही हुआ था। जन-गण की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। ऐसे में युद्ध की स्थिति से देश और अधिक संकटग्रस्त हो गया। जो भी हो, बांग्लादेश एक नए देश के रूप में दुनिया के नक्शे पर जन्म ले ही लिया।

उस साल का संयोग कुछ ऐसा रहा कि फाल्गुन से ही, यानी शिवरात्रि के समय से ही वर्षा शुरू हो गई। यह केवल एक-दो दिन की नहीं बल्कि पूरे साल बनी रही। इससे भारत की कृषि पर गहरा प्रभाव

पड़ा। एक ओर तो अन्न की कमी पहले से थी, दूसरी ओर यह स्थिति और भी विकट हो गई। देश में अकाल और भुखमरी जैसी स्थिति बन गई। उस समय जगजीवन बाबू कृषि मंत्री थे। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी को अपने कौशल से इस तरह निभाया कि देश अन्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। इससे पहले, यानी 1971 से पूर्व, विशेषकर बिहार में 1966 से 1969 तक लगातार चार साल सूखा पड़ा था, जिससे मिथिलांचल की हालत और बिगड़ गई थी।

सोवियत संघ और भारत के सम्बन्धों में जो मजबूती आई, उसके आधार पर इन्दिरा गाँधी ने बीस सूत्री कार्यक्रम बनाया। यह समाजवादी दिशा की ओर झुकाव लिया हुआ कार्यक्रम था।

1967 के चुनाव में देश के कई राज्यों की सरकारें बदल गईं। कांग्रेस पार्टी, जो अब तक राज्यों से लेकर केन्द्र तक एकछत्र राज करती रही थी, उसमें बड़ा मोड़ आया। बिहार में भी कांग्रेस की सरकार हार गई। महामाया बाबू ने 'जनक्रांति' नाम से एक नया दल बनाकर सरकार बनाई और मुख्यमंत्री बने। कांग्रेस से बाहर की सभी पार्टियाँ मिलकर सरकार में शामिल हुईं। चूँकि इसमें तरह-तरह की विचारधाराओं के विधायक थे, इसलिए सरकार चलाना कठिन था। फिर भी कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व में समाजवादी और साम्यवादी पार्टियों के साये से सरकार बनी। जनकल्याण के कार्यक्रम भी बने। शिक्षा के क्षेत्र में इतना बदलाव अवश्य हुआ कि मैट्रिक की परीक्षा में अंग्रेज़ी को धकिया दिया गया। यानी अब तक जहाँ अंग्रेज़ी पास करने पर ही छात्र को पास माना जाता था, वह नियम बदल गया। परिणामस्वरूप रिज़ल्ट में काफी सुधार हुआ।

1967 के चुनाव के समय तक मधुबनी जिला बना नहीं था। तब 'पूर्वी मधुबनी' और 'पश्चिमी मधुबनी' के नाम से दो संसदीय क्षेत्र थे। पश्चिम से भोगेन्द्रजी और पूर्व से शिवचन्द्र झा जी जीतकर संसद

पहुँचे। बिहार सरकार में इतनी खींचातानी रही कि अठारह महीने ही सरकार चली। जैसे स्वतंत्रता आन्दोलन (1947) के समय जनता में राजनीतिक चेतना उभरी थी, वैसे ही 1967 के चुनाव के समय भी उभरी। 1952 से 1962 तक चुनावों में जो सुषुप्तावस्था थी, उसमें जागरूकता आई और जनता सड़कों पर उतरी।

साम्यवादी दल का प्रभाव कमलपुर पर भी पड़ा। साम्यवादी दल की जिला इकाई ने कई कार्यक्रम ज़मीन पर उतारे। यहाँ एक और बात थी– सरकार के कार्यक्रम में मधुबनी जिला भले न रहा हो, पर साम्यवादी पार्टी ने उसे अपना जिला बना लिया था। कोसी नहर से लेकर बटाईदारी और सूदखोरी तक अनेक कार्यक्रम थे। भोगेन्द्रजी सांसद थे, वे गाँव से लेकर संसद तक जिले की समस्याएँ उठाने लगे।

मंगलदेव के साथ रामकिसुन ने पूरा समय समाज, यानी कमलपुर में लगाना शुरू कर दिया। कमलपुर में नियमित कार्यक्रम और नियमित बैठकें, अर्थात पार्टी की बैठकें, होने लगीं। इससे समाज में जागरूकता बढ़ी। सदस्य संख्या में वृद्धि हुई। जुलूस के रूप में साम्यवादी दल ने अपने प्रदर्शन कमलपुर में दिखाने शुरू कर दिए। गाँव में सभा, अंचल में सभा और जिला स्तर की सभा में भी अपनी भागीदारी दर्ज कराने लगे। पार्टी कार्यक्रमों को समाज में उतारने के पीछे वे दोनों तन-मन से जुट गए।

पार्टी के प्रभाव को देखकर जिला स्तर से पार्टी स्कूल चलाने का कार्यक्रम भी कमलपुर में बना। तीन दिन का कार्यक्रम हुआ, जिसमें भागलपुर से जनार्दन चौधरी, सीतामढ़ी से चन्द्रकेतु शर्मा और भोगेन्द्रजी का कार्यक्रम तय हुआ। कार्यक्रम बहुत अच्छा रहा। जिले के सैकड़ों नवयुवक इस कार्यक्रम में शामिल हुए।

भोगेन्द्रजी की आमसभा भी आयोजित हुई। जिस तरह सभा में लोगों की भारी उपस्थिति रही, उसी तरह उनका भाषण भी

जनकल्याणकारी रहा। अब तक साम्यवादी दल को 'धर्म विरोधी', 'जाति विरोधी' कहकर जातिवादी पार्टी और धर्मवादी पार्टी अपने लिए अलग स्थान बना चुकी थीं, पर इस सभा ने उस धारणा को गहरी चोट दी।

कमलपुर में एक साथ दो तरह के आन्दोलन शुरू हुए। पहला था ज़मीन की बटाईदारी का और दूसरा सूदखोरी का। संयोग यह था कि गाँव में कोई बड़ा ज़मींदार नहीं था और न ही सूदखोर महाजन। हाँ, कुछ ज़मींदार जरूर ऐसे थे जिन्होंने समय की हवा देखकर अपनी ज़मीनें बेच दी थीं। लेकिन एक ज़मींदार ऐसा भी था जिसके पास सौ बीघे से अधिक ज़मीन थी। गाँव की कुल ज़मीन लगभग पाँच सौ बीघे की थी और पाँच ज़मींदार थे। मंगलदेव और रामकिसुन ने बहुत कोशिश की कि जो सही बटेदार थे, वे बटाई का केस करें। लेकिन हुआ नहीं। सही बटेदार या तो दबाव में चुप रहे या फिर राजनीतिक आधार पर विरोधी खेमे से जुड़ गए।

फिर भी मंगलदेव और रामकिसुन के नेतृत्व में साम्यवादी दल के बटेदारों ने केस दायर किया। ज़मीन पर दखल करना बड़ी समस्या बन गई। क्योंकि ज़मींदार अब खुद खेती नहीं करते थे। गाँव में असली गरीब बटेदार और कानूनी बटेदारों के बीच संघर्ष की स्थिति बनने लगी, जिसका सीधा लाभ ज़मींदार को होता।

इसी बीच एक और योजना बनी– जिस ज़मीन पर बटाई खेती होती थी, उसके अतिरिक्त जो ज़मींदार की ज़मीनें थीं, जैसे गाछी-कलम और कचहरी व उसके आसपास की ज़मीन, उस पर कब्ज़ा करने की योजना बनाई गई। गाँव का विभाजन साफ़-साफ़ दो दलों में हो गया। कुछ और कारणों से तीसरा समूह भी बन गया। वह संगठित रूप में नहीं था, पर इतना जरूर था कि न तो पूरी तरह ज़मींदार के साथ और न ही पूरी तरह बटेदारों के साथ।

विभाजन ऐसा हुआ कि लगभग हर परिवार किसी-न-किसी रूप में केस से जुड़ गया– कोई गवाह के रूप में, कोई जमानतदार के रूप में। कानूनी बटेदारों को अगर पूरी तरह ज़मीन नहीं मिली, तो कुछ ज़मींदार की ज़मीन भी बँट गई और ज़मीन का उचित मूल्य चौथाई से आधे तक देकर लगभग सारी ज़मीन बटेदारों के पास आ गई। इस प्रकार गाँव, यानी कमलपुर, ज़मींदारों से मुक्त हो गया।

बटाईदारी और ज़मीन कब्ज़े की इस लड़ाई के बीच आगलगी का केस हो गया। ज़मींदार तो अपने आप कटे-छँटे रह गए, पर गाँव वाले बुरी तरह फँस गए। कई जातियों के लोगों को इस केस में फँसाया गया। उनतीस लोगों पर केस दर्ज हुआ। असली कारण कुछ नहीं था– रातोंरात पन्द्रह-बीस झोंपड़ी हरिजन (मुसहर) के नाम पर खड़ी कर दी गई थी। जब बटेदार दखल देने निकले, तभी उसमें आग लगा दी गई और हरिजनों को अगुआ बनाकर केस दायर कर दिया गया।

फिर भी इस घटना ने नया जीवन दिया। उनतीस उत्साहित नवयुवक समाज में सुधार की राह पर खड़े हो गए। जिस तरह साम्यवादी विचारधारा गाँव में गहराई से उतरी, उसी तरह पंचायत प्रमुख बनकर सामन्तवादी विचारधारा भी उभरती रही। लेकिन इतना ज़रूर हुआ कि गाँव में न तो धर्म के नाम पर और न जाति के नाम पर कोई बड़ा झंझट हुआ।

गाँव के बीच झगड़े-तनाव इतने बढ़ गए कि पास-पड़ोस में रहकर भी लोग बोलचाल बंद कर बैठे। विचारधारा के असर से अगर बातचीत भी होती तो झगड़े की नौबत आ जाती। जब बोलचाल बंद हुई, तो लेन-देन और आपसी सहयोग भी प्रभावित हुआ, जिससे समाज का चलना कठिन हो गया। पहले जो ज़मींदारों का प्रभाव था, वह भी खत्म हो गया। आखिरकार सबने समझ लिया-

"खाया-पीया धोया हाथ, तेरा-मेरा कौन साथ।"

समाज की विचारधारा पर असर पड़ा। अब तक जो बात एक-दो लोगों के मुँह से निकलती थी, वही बात अधिकांश लोगों के मुँह से निकलने लगी-

"ज़मीन और ज़मींदार को लेकर अब तक समाज में झगड़ा था, लेकिन वह तो अब रहा नहीं। इसलिए पुराने दोष को समाप्त कर सब एक इकाई बनकर सहयोग करें।" यह अच्छा विचार था, इसलिए गाँव की विचारधारा में एकरूपता बनी। एक स्वर में सबने अपनी सहमति जताई कि एक समाज हैं, इसलिए एक बने रहने में ही कल्याण है।

मंगलदेव और रामकिसुन ने भी अपने दल, यानी साम्यवादी दल, के भीतर सहमति बना ली थी कि समझौता हो जाए। पर बाधा यह थी कि तेरह ऐसे मुकदमे थे जो तीस साल से अदालत में लंबित थे। बिना उनका समाधान किए समाज में समझौता कैसे होता। हाँ, यह संभव था कि समान रूप से या थोड़ा कम-बेस अधिक मुकदमे दोनों ओर होते तो भार देखकर समझौता हो जाता, पर कमलपुर में स्थिति वैसी नहीं थी। एक ओर साम्यवादी दल एकतरफ़ा प्रतिवादी था और दूसरी ओर विपक्ष एकतरफ़ा वादी। फिर भी सबने सहमति जताई कि एक शर्त पर समझौता हो सकता है।

वह शर्त यह थी कि चूँकि विवाद समाज के भीतर का है, इसलिए समाज ही मिलकर उसका निपटारा करे। और पंच वे हों जो किसी झंझट या मुकदमे में संलग्न न रहे हों। पूरे गाँव ने सहमति जताई, पर जब ऐसे लोगों को खोजा गया तो एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो किसी न किसी दल से जुड़ा न हो।

भोगेन्द्रजी की उपस्थिति में आपसी समझौते का विचार उठा। जब वे कार्यक्रम में कमलपुर आए थे और वापस लौटने लगे, तब विपक्षी दल यानी दूसरी पार्टी के दर्जनों लोग आकर बोले-

"जहाँ जो हुआ सो हुआ, आप जो कहेंगे हम सब तैयार हैं।"

भोगेन्द्रजी ने अपना विचार दिया कि सब मिलकर बैठें और विवाद का अन्त करें। उसके बाद वे बार-बार पूछते भी रहे कि हुआ क्या।

बटाईदारी के पीछे-पीछे सूदखोरी का आन्दोलन भी चल रहा था। गाँव के पचांनबे प्रतिशत लोग अन्न-पानी या रुपया-पैसा, कर्ज के नीचे दबे हुए थे। जैसे ज़मींदार मालिक, वैसे ही महाजन भी मालिक थे। बीच में ही भोगेन्द्रजी के मुँह से सभी सुन चुके थे कि कितने भी दिन का कर्ज क्यों न हो, दो गुना से अधिक नहीं लिया जा सकता। इस बात पर सबके मन में विश्वास जम गया। महाजनों का कर्ज लौटाना समाज ने रोक नहीं रखा था। हाँ, छिटपुट घटनाएँ–पकड़-धकड़, गाली-गलौज–ज़रूर हुईं, लेकिन सामूहिक रूप से कभी नहीं।

इसी बीच मधुबनी जिला बन चुका था। नित्यानन्द बाबू डी.एम. थे। विधिवत लखनौर ब्लॉक का काम शुरू नहीं हुआ था। अट्ठाईस पंचायतों वाला ब्लॉक मधेपुर था। कमलपुर में बी.डी.सी. की बैठक का कार्यक्रम बना। नित्यानन्द बाबू स्वयं भी आए। कार्यक्रम के दौरान महाजनी की चर्चा हुई, बैंक की चर्चा हुई और ऋण-मुक्ति के प्रमाणपत्र भी बाँटे गए।

हालाँकि प्रमाणपत्र कुछ ही कर्जदारों को मिले, आम कर्जदारों को नहीं। लेकिन इतना अवश्य हुआ कि उन कर्जदारों को प्रमाणपत्र मिला जिन पर भारी-भरकम कर्ज था। महाजनों ने जब अपना हिसाब जोड़कर देखा तो पाया कि बारह आना, यानी तीन चौथाई, कर्ज तो गया ही। मजबूरी में उन्होंने अपने कारोबार में ढील दी। इसी बीच एक महाजन की मृत्यु हो गई और परिवार में चार भाइयों के बीच भिन्न-भिन्नता हो गई। चारों के संतान नौकरी या कारोबार में लग गए। बड़े महाजन की महाजनी बन्द होते ही छोटे-छोटे महाजन-व्यापारी भी अपने हाथ-पाँव समेटने लगे।

गाँव की स्थिति यह थी कि किसी परिवार में कन्यादान हो या

मृत्यु का श्राद्ध-कर्म, बिना कर्ज लिये काम नहीं चलता था। गाँव के नवयुवकों ने अपना जीवन अपने बल पर खड़ा करने के लिए जी-जान लगा दी। छोटे-मोटे कारोबार और खेती के तौर-तरीकों में बदलाव आया। गाँव की स्थिति दिन-प्रतिदिन सुधरने लगी।

कमलपुर का प्रभाव चौबगली गाँवों पर भी पड़ा। वहाँ भी वैचारिक संघर्ष शुरू हुआ। जैसे कमलपुर में अनेक जाति और अनेक सम्प्रदाय थे, वैसे ही अन्य गाँवों में भी थे– थोड़ा कम या थोड़ा अधिक, लेकिन थे सब जगह। साम्यवादी विचारधारा के प्रभाव से पहले भी झगड़े होते थे, लेकिन वे होते थे वंश-परम्परा के नाम पर, जिससे समाज में कोई नवीनता नहीं आती थी और उल्टे नुकसान ही होता था।

साम्यवादी विचारधारा आने से संघर्षों का रुख बदला। अब आपसी लड़ाई-झगड़े से निकलकर समाज की आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति पर असर पड़ा। पहले पढ़ाई-लिखाई केवल कुछ जातियों के हाथों में बँधी हुई थी, उस बन्धन में ढील आई। स्कूल-कॉलेजों की संख्या भले तीव्र गति से नहीं, लेकिन धीमी गति से बढ़ने लगी। अब तक रोज़गार यानी उद्यम भी खास जातियों के बीच बंधक बने थे, उनमें भी बदलाव आने लगा।

मधेपुर ब्लॉक नमगर-चौड़गर पेटवाला ब्लॉक था। पूरब में कोसी नदी की पूर्वी पार तक और पश्चिम में कमला नदी की पश्चिमी पार तक यह फैला हुआ था। कोसी क्षेत्र की पंचायत मटरस, मानो कामधेनु गाय की तरह थी। कोसी के उपद्रव के नाम पर कई सुविधाएँ मिलती थीं। एक तो वैसे भी अन्य पंचायतों की अधिकांश आबादी केवल सरकार को चीनी, गेहूँ और मिट्टी के तेल की कोटा प्रणाली तक ही समझती थी, उससे आगे की जानकारी किसे थी। इसलिए पंचायत के कर्ता-धर्ता दोनों हाथों में लड्डू पाते थे। मटरस पंचायत का मुखिया

ऐसे परिवार से था, जिसके पूर्वजों के पास गाँव की अधिकांश ज़मीन थी और महाजनी का कारोबार भी था। अब महाजनी चाहे कम हो गई हो, पर सरकारी आमदनी से उनका मन और धन दोनों भरे रहते थे।

मधेपुर ब्लॉक की कुछ पंचायतों के मुखियाओं ने मटरस के मुखिया को जिम्मा सौंपा कि कमलपुर के रामकिसुन के दो भाइयों की शादी मटरस में हुई है। दोनों बेटियों को जबरदस्ती हीरालाल के घर से निकालकर पुनः मटरस लाया जाए। अपनी राजनीति समझकर मटरस के मुखिया ने यह भार सहर्ष उठा लिया। कमलपुर पंचायत के प्रमुख ने भी यह जिम्मा ले लिया कि किसी भी तरह की बाधा या रुकावट नहीं होने देंगे।

दिन के बारह बजे, हीरालाल की जाति-टोले के लोग गोलबंद हुए और प्रमुख के साथ आए आदमी मिलकर हीरालाल के घर पहुँचे। तीनों भाई–रामकिसुन और माता-पिता यानी हीरालाल और उनकी पत्नी–आँगन में बैठे हुए थे। पाँचों जन एक-दूसरे को देखते रहे और मन-ही-मन परीक्षा के लिए रखे बकरे की तरह अपने जीवन के अंतिम क्षणों का हिसाब करने लगे। निर्लज्जता की भी सीमा होती है, लेकिन उससे भी आगे बढ़कर मटरस का मुखिया आँगन की दहलीज पर खड़ा हुआ और जिन बेटियों को दान स्वरूप दिया गया था, उन्हीं दोनों को बलपूर्वक बाँह पकड़कर आँगन से बाहर निकाल ले गया।

अंत तक हीरालाल और उनकी पत्नी यही कहते रहे-

“ये तुम्हारी बेटियाँ हैं, ले जाओ तो अपनी मानकर ले जाओ।” यही हुआ। दोनों बेटियों को अपहरण कर लोग ले गए। घटना की चर्चा पूरे इलाके में होने लगी। अधिकांश गाँव के सामान्य लोग इस घटना की निन्दा करने लगे।

रामकिसुन के मन के विचारों में और कठोरता आ गई। जिस जाति के रामकिसुन थे, उनकी संख्या इलाके में कम थी। कुछ गिने-

चुने गाँवों में ही उनकी जाति पाई जाती थी। अब तक परम्परा यही रही थी कि बेटा-बेटी का विवाह अपनी जाति में होता था। जैसे मटरस के मुखिया के संबंध सभी गाँवों में थे, वैसे ही रामकिसुन के भी थे। इसलिए अपने-अपने संबंधियों के समर्थन में सभी गाँवों के लोग अपने-अपने पक्ष में खड़े हो गए। बात-बात में कहा-सुनी और गाली-गलौज गाँव-गाँव में फैल गयी।

इसी समय साम्यवादी दल, जिसके नेता रामकिसुन थे, और अधिक मज़बूती से गाँव के कार्यक्रम के मंच से लेकर ब्लॉक और जिला के मंच तक उठने लगा। सच और झूठ के बीच की लड़ाई में रामायण के बाली की तरह सत्य को असत्य की आधी शक्ति प्राप्त हो जाती है। लेकिन सत्य जब अपनी शक्ति के साथ खड़ा होता है तो उसका प्रभाव गहरा होता है। यही हुआ कि वैचारिक संघर्ष में रामकिसुन का विचार ऊपर उठा और मुखिया का विचार दब गया।

इसी बीच एक और कारण था। रामकिसुन के ससुर रमाउत पंथ के महंथ थे। उन्होंने अपने आँगन में मन्दिर बनाया था और अन्य गाँवों में भी अपने चेले बना लिए थे। ज़मींदार और महाजनों की तरह महंथों ने भी अपनी आमदनी के रास्ते बना लिए थे। जब बेटियों को अपने घर ले आए, तो महंथजी की विचारधारा पर गहरा प्रहार हुआ। कई चेले उनके मुँह पर ही कटु बातें कहने लगे। इससे महंथजी की प्रतिष्ठा और आमदनी दोनों घट गईं।

लेकिन सत्य का अपना महत्व होता है। कितना भी प्रभावशाली व्यक्ति क्यों न हो, सत्य का असर होता ही है। कुछ दिन बाद महंथजी ने अपने विचारों में सुधार किया। सुधार होने के बाद उन्होंने स्वयं ही सोचा कि बेटियों को, यानी अपनी बेटियों को, पुनः रामकिसुन के परिवार में वापस कर दें। पर यह होगा कैसे?

गाँव-गाँव के लोगों को पंच मानकर, अगुआ मानकर यह भार

सौंपा गया कि बेटियों की वापसी कराएँ। हीरालाल का चचेरा भाई कमलपुर आया और हीरालाल से कहा-

"भैया, उस दिन की जो गलती थी, हो गई। अब आप बेटियों को अपने घर ले आइए।"

हीरालाल ने उत्तर दिया-

"जैसे घर से निकालकर मटरसवाले ले गए थे, वैसे ही अगर घर में लाकर दे देंगे तो हम रख लेंगे।"

विचार वहीं अटक गया। साल बीत गया। दोनों बेटियाँ और उनकी माँ दुःख और चिन्ता से पीड़ित हो गईं। दोनों बेटियाँ बीमार पड़ गईं। मटरसवाले इस बात पर अड़े रहे कि कमलपुर वाले आएँ और बेटियों को ले जाएँ। हीरालाल भी इसी विचार पर अड़े रहे कि जैसे बेटियों को वे ले गए थे, वैसे ही वापस लाकर दें। हम स्वयं जाकर नहीं लाएँगे।

अगर कोई हीरालाल से कहता कि बेटे की शादी कर दो, तो वे एक ही उत्तर देते-

"पहले बेटीवाले बेटी की शादी करें, फिर हम बेअे की करेंगे। अगर जाति में शादी नहीं होगी तो दूसरी जाति में करेंगे, पर बेटी की शादी के बाद ही।"

धीरे-धीरे समय बीतता गया। तीन साल गुजर गए। इस बीच महंथजी के अपने अनुयायी, जिन गाँवों में उन्होंने पंथ बनाया था, सब टूट गए। अन्ततः समझौता हुआ और अन्य गाँवों के लोग अगुवाई करते हुए दोनों बेटियों को पुनः हीरालाल के परिवार में लाकर सौंप दिए।

दोनों बहुएँ तो हीरालाल के परिवार में लौट आईं, लेकिन जो स्नेह पहले, यानी कमलपुर से विवाह से पहले था, उसमें कमी आ

गई। हाँ, हीरालाल के उत्साह में दुगुना से भी अधिक उत्साह अवश्य आ गया क्योंकि यह केवल दो समाजों के बीच नहीं बल्कि दो विचारधाराओं के बीच की सफलता भी थी।

रामकिसुन अपनी पार्टी–साम्यवादी दल–के जिला स्तर के नेता, यानी जिला परिषद के सदस्य भी बन गए। जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे उनका प्रभाव भी बढ़ता गया। एक निर्भीक कार्यकर्ता के रूप में उन्होंने अपनी पहचान बना ली। कमलपुर समाज में भी वैचारिक मोड़ आने लगा। वही जातीय समाज, जिसने पहले रामकिसुन के परिवार से बेटियों को जबरन निकालने में मुखिया और मटरस पंचायत का साथ दिया था, वही अब रामकिसुन के साथ खड़ा हो गया। नई पीढ़ी भी उठ खड़ी हुई, जिससे पुरानी पीढ़ी का असर घटने लगा।

इसी बीच मधेपुर ब्लॉक विभाजित हो गया। चौदह पंचायतों को मिलाकर लखनौर ब्लॉक बना। कुछ पंचायतें और भी विभाजित हुईं। मटरस मधेपुर ब्लॉक में रह गया और कमलपुर लखनौर ब्लॉक में आ गया। इससे मटरस के मुखिया और कमलपुर के प्रमुख के बीच का पुराना रिश्ता भी ढीला पड़ गया।

कमलपुर का साम्यवादी आन्दोलन दिन-ब-दिन बढ़ता गया। जैसे पार्टी का प्रभाव बढ़ा, वैसे ही विरोधी पार्टी का विघटन होने लगा। अब तक जो सामंती संस्कार प्रमुख में थे, वे और उग्र हो गए। एक दिन गाँव की पसारी जाति यानी हजाम की भैंसी थाना के दारोगा से मिलकर प्रमुख लें गये। भैंसवाले पर पहले से एक केस लंबित था, इसलिए सीधे-सीधे भैंस नहीं छीन सके। लेकिन घटना के तीन दिन बाद प्रमुख यानी कमलपुर के मुखिया को बुरी तरह पीटा। पिटाई के बाद प्रमुख का प्रभाव काफी घट गया और अपने समर्थकों के बीच भी विवाद शुरू हो गया।

रामकिसुन तीन भाइयों में बीच वाले थे। ननूलाल बड़े और जीवनलाल छोटे भाई थे। डेढ़ साल बाद ननूलाल को एक बेटी हुई। वैसे तो उनकी पत्नी जीवन की घटनाओं से पहले से ही रोगग्रस्त हो चुकी थीं, बेटी होने के बाद और अधिक कमजोर हो गईं और साल भर में ही उनकी मृत्यु हो गई। बेटी जीवित रही। कुछ दिन बाद ननूलाल ने दूसरा विवाह कर लिया।

चार साल बीतते-बीतते रामकिसुन को दो बेटियाँ हुईं। लेकिन उनकी पत्नी भी लगातार बीमार रहने लगीं। पहली बेटी ढाई वर्ष की हो गई थी, पर दूसरी बेटी को एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ था कि उनकी पत्नी भी चल बसीं। इससे परिवार की परेशानियाँ और बढ़ गईं। बावजूद इसके, रामकिसुन ने परिवार सँभालते हुए भी पार्टी से अपना जुड़ाव पहले की तरह बनाए रखा।

इसी बीच और भी घटनाएँ घटीं। एक साल पहले रामकिसुन की माँ और पिता–हीरालाल और उनकी पत्नी–का भी निधन हो गया। हालाँकि ननूलाल का दूसरा विवाह हीरालाल ने अपने सामने ही करा दिया था। पत्नी की मृत्यु के एक साल बाद रामकिसुन ने भी दूसरा विवाह किया। पहले विवाह से उनकी दो बेटियाँ जीवित रहीं।

पत्नी की मृत्यु के बाद महंथजी का मन और टूट गया। उनकी केवल एक संतान थी। पहले जो सुध-बुध थी, उसमें भी बदलाव आने लगा। उनके पास दस-बारह बीघा खेत था। आधे से अधिक खेत बंजर होकर बेकार पड़ा था, लेकिन चार-पाँच बीघा खेत अभी भी खेती योग्य था।

उम्र के लिहाज़ से–सत्तर वर्ष से ऊपर निकल जाने पर–और पत्नी की मृत्यु के कारण महंथजी का मन पूरी तरह बिखर गया। जब तक वे गाँव में रहते, तब तक भोजन-पानी का जुगाड़ उनकी पत्नी करती थीं। जब सेवकान में जाते तो मंदिर की मूर्ति को झोले में

डालकर साथ ले जाते, ताकि पूजा में कोई बाधा न हो। अपने गाँव में तो उन्होंने अपनी पत्नी को ही कंठी देकर शिष्य बना लिया था, जिससे खाना बनाने में कोई छूत-छात न रहे। लेकिन जब सेवकान में जाते और जिस परिवार के यहाँ ठहरते, वहाँ अगर स्त्रियाँ शिष्य बनकर कंठी पहन चुकी होतीं, तो उनके हाथ का भी बना भोजन वे नहीं खाते। अपने हाथ से ही खाना पकाते और खाते।

इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें मनपसंद भोजन मिलता ही था। वे एक सेवक यानी शिष्य अवश्य साथ रखते थे, पर उसे चूल्हे के पास सारे सामान छोड़कर रखना पड़ता था। महंथजी अपने हाथों से ही पकाते और खाते।

साल भर में छह महीने महंथजी सेवकान में घूमते और छह महीने गाँव में रहकर मंदिर में पूजा-अर्चना करते। साल में एक बार मंदिर स्थापना के नाम पर भंडारा करते, जिसमें अपने सभी सेवकों को बुलाते। उसमें दो दिन तक भंडारा और प्रवचन चलता। सेवक लोग अपने गुरुद्वार की तरह मानकर वहाँ पहुँचते। अपनी श्रद्धा और भेंट भी अर्पित करते।

मंदिर स्थापना के साथ दूसरा उत्सव रामनवमी भी महंथजी करवाते। यह कार्यक्रम सेवकों के बीच न होकर पूरे गाँव के समाज में होता। इसमें रामभजन से लेकर रामलीला तक का आयोजन होता। साल-दर-साल कौन गिनाए, पर एक ही गाँव में दर्जनों जगह रावणवध का आयोजन होता। पर यह कैसा रावण था जो वध के बाद भी जीवित रह जाता। जब तक रामायण है, तब तक राम-रावण रहेंगे और जब तक महाभारत है, तब तक एकलव्य और द्रोणाचार्य भी रहेंगे। खैर, यह सब अतीत के विचार थे।

बैशाख का महीना था। तपा देने वाली धूप, दोपहर के तीन बजे। महंथजी अपने बेटी-दामाद के गाँव– कमलपुर पहुँचे। जो कमलपुर

कभी महंथजी का अत्यधिक स्वागत करता था, वही आज उन्हें आग में झुलसी बगीचे की तरह प्रतीत हो रहा था। अपने कोख की संतान, जो उनसे पहले चल बसी थी और जो उनका दामाद था, वह आज दूसरे का दामाद बन गया। यह सोचकर और अपनी दोनों नातिनों को देखकर महंथजी का मन बेकाबू हो उठा।

दहलीज़ पर पाँव रखते ही उन्होंने नातिन को पुकारा-

"बेटी शांति, इधर आओ।"

शांति, महंथजी की बड़ी नातिन, 'बाबाजी' रूपधारी जैसे मुख से 'बेटी' सुनकर अकबका गई थी कि तभी रामकिसुन अपने आँगन से निकलकर दहलीज़ पर पहुँचे। उसी क्षण महंथजी बोले-

"दामाद जी, शांति को हम अपने साथ ले जाएँगे। उसका पालन-पोषण और कन्यादान भी हम अपने हाथों से करेंगे। आपको कोई भार नहीं उठाना पड़ेगा।"

कलशाए हुए रामकिसुन के मन में कई विचार एक साथ उठ खड़े हुए, पर मुँह से बस इतना निकला-

"पहले हाथ-पाँव धोकर कुछ खा लीजिए। फिर जो होगा, समझ लिया जाएगा।" ❑

चौथा पड़ाव

1974 ईस्वी आते-आते विचारधारा के प्रवाह में कमलपुर कुरुक्षेत्र बन गया। एक नहीं, अनेक प्रश्न समाज के बीच खड़े हो गए। एक ओर सामंती विचारधारा कर्मक्षेत्र में जोर मारकर उतरने लगी तो दूसरी ओर साम्यवादी विचारधारा ने भी अपनी गति पकड़ ली। नतीजा यह हुआ कि बात-बात पर और काम-काज में टकराव होने लगे।

देश की परिस्थिति किसानोन्मुख बन रही थी। नयी-नयी तकनीकें और सुविधाएँ किसानों को मिलने लगीं। अमेरिका से गेहूँ कर्ज में आ रहा था, लेकिन वह बांग्लादेश की लड़ाई के बीच टूट गया। इन्दिरा जी प्रधानमंत्री थीं। बीस सूत्री कार्यक्रम की योजना बनाकर उन्होंने देश को भोजन के प्रश्न पर आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में कठोर कदम उठाए, जिससे उजड़े-उपटे गाँवों के चेहरों पर रौनक उतरने लगी। कमलपुर के किसान भी आगे बढ़कर बोरिंग करवाने का विचार कर पाँच लोग मिलकर दमकल-बोरिंग लेने को तैयार हुए। नई योजनाओं से किसानों को प्रोत्साहन मिलने लगा। सरकार एक-तिहाई यानी तैंतीस प्रतिशत कर्ज का अनुदान के रूप में सहायता देने लगी।

जब पाँचों लोग एक साथ बैठकर बोरिंग के उपयोग पर विचार करने लगे तो उन्होंने बीस-बीस बीघे के हिसाब से अनुमान लगाया कि आधे गाँव की खेती के लिए पानी की व्यवस्था हो जाएगी। जैसे ही किसानों को पानी की सुविधा मिलेगी, उत्पादन में वृद्धि होनी ही है। शुरू में पाँचों का विचार बोरिंग करवाने का था, लेकिन सरकारी प्रक्रिया और बैंक से जुड़ी जटिलताओं में पड़कर दो लोग पीछे हट गए। तीन लोग–मंगलदेव, रामकिसुन और रामदेव–अपने विचार पर

अडिग रहे और तीनों ने अलग-अलग बोरिंग गड़वा लिए। उसी समय झंझारपुर में स्टेट बैंक खुला था, वहीं से इन्हें बोरिंग-दमकल कर्ज के रूप में मिला।

मंगलदेव, रामकिसुन और रामदेव, तीनों ने ही नए किसान के रूप में अपनी उपस्थिति समाज में दर्ज कराई। कमलपुर की खेती में नवीनता की शुरुआत हुई। लेकिन तरह-तरह की समस्याएँ भी समाज में खड़ी हो गईं। सांड-भैसे की तरह लोगों में प्रतिद्वन्द्व की भावना शुरू हो गई। पूरा लखनौर ब्लॉक का अड्डा कमलपुर बनने लगा। जैसे खेती की पद्धति में टकराव शुरू हुआ, वैसे ही गाँव की विचारधारा में भी हुआ।

खेतों में फसलें लगी रहने के वावजूदो, उस होकर हल के बैलो को जाने की छूट थीं, अब हट्टे-कट्ठे बैलों को रोकने का सिलसिला शुरू हुआ। चौक-चौराहों पर आवाजें उठने लगीं-

“अगर हमारे बगीचे में पाँव रखा तो पाँव काट देंगे।”

कहीं कहा जाने लगा-

“अगर हमारी ज़मीन से होकर नाला नहर निकाली तो उसी कुदाल से काटकर उसी नाला में गाड़ देंगे।”

पाँचों में से जो दो लोग बोरिंग नहीं गड़वाए, उनका कारण यह था कि वे दोनों सामंती विचारधारा से प्रभावित थे। कुआँ के स्थान पर चापाकल का विरोध होने लगा– यह कहते हुए कि चापाकल में चमड़े का वासर लगता है, जिससे पानी अशुद्ध होता है, इसलिए उससे न तो पूजा होगी और न कोई होम-हवन। हाँ, हॉलर-चक्की का भी विरोध हुआ-

“ढेकी और जत्ता से जो कूटना-पिसना होता है, वह हॉलर-चक्की से कैसे होगा।”

कमलपुर के लोग भी काम के क्षेत्र से हटने लगे। उनके मन में यह भाव गहराने लगा कि "भगवान ने जैसा जन्म दिया है, वैसे ही गुज़ारा होगा, तो अपने काम की क्या ज़रूरत।" सरकारी सुविधाएँ और तंत्र एकतरफा होने लगा। छोटी-छोटी घटनाओं के बाद साम्यवादी दल के कार्यकर्ताओं पर थानेदार बड़े-बड़े केस ठोकने लगा। जब बड़े-बड़े घटनाक्रम सामंती पक्ष करता, तो उनकी सुनवाई नहीं होती। नतीजा यह हुआ कि थाने का रूख हो या ब्लॉक-कार्यालय का, दोनों ही एकतरफा हो गए।

इसी समय वृद्धा-पेंशन और पढ़े-लिखे युवकों को बेरोजगारी भत्ता मिलने लगा। गाँव की स्थिति विचित्र हो गई। जहाँ साठ वर्ष से ऊपर वालों को पेंशन मिलनी थी, वहीं पच्चीस-तीस वर्ष के वे लोग भी पेंशन पाने लगे, जो सामंती विचारधारा के पोषक थे। लेकिन जो अस्सी वर्ष के बूढ़े साम्यवादी पार्टी से जुड़े परिवारों से थे, उन्हें पेंशन नहीं मिला। दिन-रात ब्लॉक का चक्कर लगाने पर भी उन्हें पेंशन नहीं मिली। यही हाल बेरोजगारी भत्ता का भी रहा।

लेकिन इन सबके बीच गाँव के अनपढ़-अनाड़ी लोगों ने अपनी आँखों से देखा कि ब्लॉक और थाना कुछ खास लोगों के लिए हैं, आम लोगों के लिए नहीं। सब कुछ आँखों के सामने हो रहा था, पर रोकने वाला कोई नहीं। रोकता भी कैसे? जब जीवन के बुनियादी प्रश्न सामने हों, तो उन्हें छोड़कर छोटे-छोटे सवालों में उलझना ठीक नहीं।

साम्यवादी दल के लोग छोटे विवादों को नज़रअंदाज़ करते हुए किसानों के नए चेहरों को उजागर करना चाहते थे। अधिकांश लोग खेती से जुड़े थे और वही जीवन का मुख्य आधार था। सरकारी संस्थाएँ, यानी कृषि से जुड़ी संस्थाएँ, भी सक्रिय थीं। परम्परा से आने वाले अन्न, फल, तरकारी आदि के बीज में सुधार कर उन्होंने किसानों को नई दिशा दी और किसानों ने भी इन्हें अपनाकर अपनी खेती को

मज़बूत किया।

लखनौर ब्लॉक के कुछ गाँवों के किसान पहले से ही नगदी खेती से जुड़े थे। यानी पुराने ढंग की खेती के साथ-साथ वे मनी-क्रॉप्स भी करते थे। लेकिन जातिगत सीमाएँ अब भी थीं– अमुक फसल केवल अमुक जाति ही उगाती थी, दूसरी जाति उससे परहेज करती थी।

लखनौर ब्लॉक के दक्षिण-पश्चिम के गाँव कमला नदी के दोनों ओर थी। जब से कमला पर बाँध बना, तब से जहाँ पानी का बहाव सुविधा देता था, वहीं हर साल कटाव और नुकसान भी करता था। लेकिन इतना तो स्पष्ट था कि जिस किसान को जब जो जरूरी लगी, उसने उसी के अनुसार फसलें लगाईं और अपने जीवन का निर्वाह करता रहा।

कमलपुर गाँव में पहली किस्त यानी सामूहिक ढंग से बोरिंग होने पर खेती में उछाल आया। भले ही पूरे गाँव की खेती में बदलाव नहीं आया हो, पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि कहीं बदलाव नहीं आया। पहले गाँव की औसत उपज धान की कच्ची सेर के हिसाब से एक मन होती थी– यानी तीस किलो के बराबर। लोग इसे चालीस या अड़तालीस सेर का मन मानते थे। खैर, वह चर्चा अलग है। पूर्व में स्थानीय किस्मों की उपज 'मन' के अनुमानित आँकड़े पर अच्छी मानी जाती थी; 'पूसा-21' (धान) और 'सोनरा-64' (गेहूँ) के आने के बाद प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन करीब चार गुना हो गया।

अब तक जो फल-फूल और तरकारी की उपज होती थी, वहाँ भी नये बीज और पौधों के आने से उपज लगा दी। जिस तरह अन्न, सब्जी और आम के अतिरिक्त नये फल आने से गाँव की शक्ल में नवीनता आई, वैसे ही किसानों की जिज्ञासा में भी नयापन जागा।

1975-76 ईस्वी आते-आते कमलपुर गाँव के चेहरे पर लालिमा

छा गई। खेती के मामले में गाँव का जो चेहरा था, उसमें अच्छा सुधार हुआ। खेतों के चहुँमुखी उपयोग से अनेक तरह का विकास संभव हुआ और उसके लिए अनुकूल परिस्थिति भी बनी।

दरभंगा जिले (तब तक विभाजन नहीं हुआ था) के पूसा कृषि फार्म और मुजफ्फरपुर जिले के ढोली कृषि फार्म खुलने से किसानों को अनेक समस्याओं का निदान मिलने लगा। कृषि में क्रांति की शुरुआत हुई। ब्लॉक स्तर पर भी कृषि विभाग का दायरा बढ़ा और प्रखंड स्तर पर पी.ओ. कार्यालय खुला। हर पंचायत में एक-एक बी.एल.डब्ल्यू. की नियुक्ति हुई, जो किसानों को खेती से जुड़ी जानकारी देने लगे। प्रखंड कार्यालय से नई कृषि सामग्री और अनुदानित पूँजी सीधे किसानों के हाथ में आने लगी।

शुरू में बी.एल.डब्ल्यू. धान-गेहूँ और तेलहन की जानकारी तथा सब्सिडी देने का काम करता था। लेकिन जब-तब पूसा फार्म में किसान मेले लगते, तो वहाँ जाकर किसान प्रेरणा पाते। फार्म अपनी क्षमता के अनुसार कार्यक्रम करता, जिससे किसानों को किसी न किसी तरह लाभ मिलता। रंग-बिरंगे धान-गेहूँ के नये बीज, उन्नत किस्म की सब्जियाँ, फल और पौधों की किस्में किसानों को मिलने लगीं, जिनका लाभ कमलपुर के किसानों ने उठाया। आज की स्थिति यह है कि कमलपुर में मुश्किल से ही कोई अन्न होगा, जिसका बीज परिष्कृत रूप में न आया हो।

इसी बीच, मंगलदेव और रामकिसुन का वैचारिक संबंध पैटघाट (लोहना) के डॉ. नागेन्द्र कुमार झा से भी बना। जैसे नागेन्द्रजी कमलपुर आकर मंगलदेव और रामकिसुन से मिलते, वैसे ही दोनों भी पैटघाट जाकर मिलते। पारिवारिक संबंध बनने लगे। नागेन्द्रजी के बड़े भाई भी साम्यवादी विचारों से जुड़े थे, पर नेपाल सीमा पर अधिक रहने के कारण उतना संपर्क नहीं हो सका। हाँ, इतना जरूर हुआ कि

दोनों एक-दूसरे को जानने लगे।

नागेन्द्रजी कॉलेज में शिक्षक थे, छुट्टी कम मिलती थी, इसलिए गाँव कम आ पाते थे। पर अपने गाँव और मिट्टी-पानी से गहरा लगाव रखते थे। उनके पिता स्वर्गीय भुवनेश्वर झा गाँव में इतने सक्रिय थे कि उनके आँगन में सैकड़ों किस्म के फूलों की फुलवारी लगी रहती थी। फूल लगाने की तरह ही उनका बोलचाल और व्यवहार भी मधुर था। यही कारण था कि संबंध गहरे बने और जीवन के अंतिम समय तक बने रहे।

समाज की मौजूदा रूपरेखा में नागेन्द्रजी परिवार का योगदान सराहनीय रहा। अन्न और पानी के मामले में चाहे जो रहा हो, पर फूल-फल और फुलवारी का जो संग्रह उन्होंने समाज को दिया, वह धरोहर बन गया। पंचमुखी अपराजिता (सफेद और नीले दोनों रंग में), माधवी, रजनीगंधा, राजवेला जैसे फूल गाँव की फुलवारी में फैल गए।

इसी बीच, यानी 1974-75 ईस्वी में, कमलपुर में एक और विचार उभरकर सामने आया। यह विचार था– जिस देश में सबको मत देने का और समान अधिकार प्राप्त है, उस समाज में छुआछूत बने रहना उचित नहीं। इसे व्यवहारिक रूप में बदलना चाहिए।

व्यवहारिक रूप से छुआछूत दो आधार पर थी। पहला– खाना-पीना। लोग एक साथ बैठकर खा तो लेते थे, लेकिन किसी के शरीर का स्पर्श होते ही छूत मान लेते थे। दूसरा– भोजन बनाने की वस्तुएँ। किसी जाति के बनाए अन्न और सामग्री को परिवार और समाज के विशेष अवसरों–यज्ञ-जप से लेकर साधारण कार्य तक–में उपयोग कर लेते थे, पर खाने-पीने के समय वही वस्तु छूत मानी जाती थी।

अनेक समस्याओं में फँसे कमलपुर के लोगों ने छुआछूत के आधार पर विचार किया। यहाँ एक साथ दो प्रश्न थे। पहला– परिवार के गठन में दूसरे समाज के साथ जुड़ना जो जातीय मुद्दा है, वह अकेले

एक समाज से हल नहीं हो सकता। लेकिन इतना तो हो ही सकता है कि दोनों एक-दूसरे के काम (परिवार से जुड़े काम) में साथ तो दे ही सकते हैं। समाज को कम-से-कम इतना लाभ तो होगा कि खाने-पीने और शारीरिक स्पर्श से जो परहेज़ है, वह मिट जाएगा।

समाज के एक-एक दुर्गुण को जब तक समाज से मिटाया नहीं जाएगा, तब तक समाज में एकरूपता नहीं आ सकती। और जब तक एकरूपता नहीं आएगी, तब तक वैचारिक समाज की विचारधारा का प्रवाह कैसे प्रवाहित होगा। जब तक विचार का प्रवाह जीवन से जुड़कर, तात्त्विक रूप में, नहीं चलेगा, तब तक सामूहिक रूप से समाज का अच्छा-बुरा विचार कैसे होगा।

इन्हीं सब विचार-विमर्श के बाद कमलपुर का समाज, जो पहले से ही एक विचारधारा में प्रवाहित हो चुका था, यह कहने वाला समाज नहीं था कि दुर्गुणित समस्याओं को जीवित रखे। वे तैयार थे, सुसज्जित भी थे। जो था, सो था, पर इतना तो हो ही गया था कि गाँव की सभी जातियों का एक समूह बन ही गया, जिसमें सब जाति एक साथ बैठकर खाने-पीने से लेकर विचार-विमर्श तक करने लगे।

हालाँकि देश में अभी भी ऐसे समाज हैं जहाँ कहीं छुआछूत मिटा हुआ दिखता है तो कहीं काले स्लेट पर मोटी पेंसिल से लिखा अक्षर जैसा धुँधला दिखाई देता है। खैर, जो हो, पर कमलपुर में तो यह हो ही गया कि सभी जातियों के विवाह की बारात और मृत्यु की काठियारी में सब सम्मिलित होते हैं। आग लगने पर भी सब मिलकर गोल बन जाते हैं।

सभी जातियों का संगठन होने पर, संख्या चाहे जैसी हो, एक साथ होने से जैसे विवाह-भोज में एकरूपता आई, वैसे ही जीवन के उद्यम यानी जीविकोपार्जन में भी एकरूपता आई। एक साथ बैठकर खाने-पीने से वस्तुओं के विन्यास में भी सुधार हुआ। हालाँकि शत-

प्रतिशत ऐसा कोई जाति नहीं है जिसके पास सब वस्तुओं का विन्यास हो। अन्न हो या फल या तरकारी– अच्छा है तो खराब भी है। जहाँ अच्छी उपलब्धि होगी, वहीं उसका उपयोग सुधरेगा। लेकिन जहाँ जीवन बनाए रखने के लिए कुछ भी चाहिए, वहाँ विश्वामित्र की तरह अभक्ष भी भक्ष हो ही जाता है।

सभी जातियों के बीच कमलपुर में जैसे संबंध बन रहे थे, वैसे ही संबंध तोड़ने के अनेक अस्त्र-शस्त्र भी चल रहे थे। हीरालाल यानी रामकिसुन के पिता, जिन्होंने ज़मीन खरीदी थी, उसी ज़मीन में लखन ने केस कर दिया। सब समाज यह देख रहा था कि झंझारपुर वाले से हीरालाल ने दस्तावेज़ लेकर खेत खरीदा था। सब खरीदते हैं, सब गाँवों में खरीदते हैं। फिर केस क्यों हुआ? जबकि उसी खेत को हीरालाल हमेशा जोतते आए थे। जब तक उन्होंने खरीदा भी नहीं था, तब तक बँटाई में वही खेती करते थे।

कमलपुर का समाज भी अन्य गाँवों की तरह ही है। सत्ता अपने नियम-कायदों से हड़पती है, समाज अपने नियम-कायदों से। जहाँ दो साल मालगुज़ारी न देने पर सरकार सोलह आने संपत्ति (खेत) हड़प लेती थी, वहीं समाज में भी क्या कुछ हड़प नहीं होता? यहाँ भी वही होता है। समाज के मुखर और ताक़तवर लोग, यानी ग़ैर-मुनासिब काम करने वाले लोग, हर समाज में होते हैं। उनकी जड़ें सत्ता से जुड़ी रहती हैं, और कभी-कभी न भी रहती हैं। बीच में पेटी-कॉन्टैक्ट भी होता है। यानी असली ठेकेदार सत्ता से जुड़ा रहता है और अपनी शक्ति के अनुसार अपनी सेना भी बना रखता है। ऐसी सेनाएँ हर समाज में होती हैं जो कमजोरों को धकियाती रहती हैं।

कमलपुर भी क्या बाहर का समाज है? वही समाज है जहाँ लोग कोर्ट-कचहरी में पैरवीकार बनकर जीविका चलाते हैं। वही समाज है जहाँ राशन-कोटे से राशन-पानी चलता है। वही समाज है जहाँ एक-

एक ज़मीन का तीन-तीन बार दस्तावेज़ होता है। वही समाज है जहाँ बिना अधिकार की ज़मीन भी हड़प ली जाती है। वही समाज है जहाँ बगीचे के आम तोड़े जाते हैं, कटहरबोनी से कटहल तोड़े जाते हैं।

बगीचे का समाज में क्या कम योगदान है? पर्यावरण के साथ आम जैसे अमृत फल भी देते हैं और ताड़-खजूर का संजीवनी रस भी बाँटते हैं। कमलपुर भी कोई ऐसा गाँव नहीं है कि बाहर से ताड़ का पेड़ देखकर 'ताड़ीपीबा गाँव' कहलाए। लेकिन यह कहना भी गलत होगा कि वारी-झाड़ी में भाँग-धतूरा नहीं होता। वह भी है।

जो है सो है। जब गाँव है तो सब कुछ है। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि कमलपुर का भूगोल भी अन्य गाँवों जैसा ही है। इतिहास चाहे अलग हो, पर भूगोल एक ही है। हाँ, कमलपुर के भूगोल में कुछ भिन्नता भी है। पेड़-पौधे बड़े होने पर जल्दी गिर भी जाते हैं। दूसरे गाँवों की तुलना में यहाँ ऊँची ज़मीन ज़्यादा है और बाँध-सड़कें भी अधिक हैं, जिससे जलभराव कम होता है।

1974-75 ईस्वी के समय गाँव के कुछ लोगों की मानसिकता ऐसी हो गई थी कि केस-मुकदमे के विषय में वे खुद को ही सब कुछ जानते थे और बाकी गाँव के लोग उनके लिए कुछ नहीं थे। बिना आधार के केस खड़ा कर देना और अदालत का व्यवहार उसी अनुकूल हो जाना, जमीन हड़पने का एक साधन बन चुका था। ऐसा ही हड़पनहार था– लखन झा। वही लखन झा हीरालाल की जमीन पर केस ठोक बैठा।

लोग जानते और देखते भी थे कि सामने-सामने चोरी हुई है, पर जब तक अदालत से प्रमाण-पत्र नहीं मिल जाता, तब तक चोर चोर नहीं कहलाता। कानून की नज़र में भले ही वह चोर न हो, लेकिन समाज की नज़र में तो वह मन-ही-मन चोर माना ही जाता है।

संयोग से स्थिति हीरालाल के पक्ष में थे। खेत उनके घर के पास

था, और रामकिसुन का प्रभाव कई मोर्चों पर समाज में पहले ही बन चुका था। इससे पहले रामकिसुन सिकमी जमीन पर कब्जा कर चुके थे, तो मन में उत्साह भी था। हीरालाल की जमीन के मुकदमे से पहले लखन झा समाज में चोट खा चुका था। ऐसे ही एक फर्जी मुकदमे में दिनेश झा ने लखन झा के लोगों को भरपूर पछाड़ा था, जमीन भी अपने कब्जे में रखी और कोर्ट से मुकदमा भी जीत लिया। इससे लखन झा का मन समाज में टूटा हुआ था। लेकिन 1969 की दुर्गापूजा के बाद उन्हें नयी शक्ति मिली।

कमलपुर की दुर्गापूजा से पहले समाज का रंग-ढंग कुछ और था। बहुत कुछ दुर्गापूजा के बाद बदला भी और सुधरा भी।

घटना 1968 ईस्वी की है, यानी जब स्वतंत्र देश इक्कीस वर्ष का वयस्क मताधिकार प्राप्त कर चुका था। खजुरबोनी गाँव से कमलपुर में बारात आई। बारात बड़ी भव्य थी। पीछे का कारण जातीय था। खजुरबोनी और ताड़बोनी गाँव की दूरी लगभग बीस मील (आज के तीस-पैंतीस किलोमीटर) थी। जातीय आधार पर खजुरबोनी वालों और तड़बोनी वालों के बीच भैंसा-भैंसी जैसा वैमनस्य चलता था, जो लगातार तीन-चार चुनावों में और गहराता गया।

एक बार तड़बोनी वालों ने खजुरबोनी के आदमी को जूते पहनकर अपने दरवाज़े के सामने से गुजरते देख लिया। उन्हें दरवाज़े पर बुलाकर कान पकड़वाया और आदेश दिया कि जूता हाथ में लेकर ही गाँव की सीमा पार करो। तत्कालीन स्थिति में खजुरबोनी वाले असहाय थे, आदेश मान लिया, लेकिन मन में आग धधकने लगी।

जवाब में खजुरबोनी वालों ने अपने समाज को संगठित किया और उसी दरवाज़े पर, जहाँ उन्हें कान पकड़वाकर जूता हाथ में लेकर सीमा पार करने को मजबूर किया गया था, तीन तरह के नटुआ नचवाने लगे। सात सौ से अधिक बारात थे। टायरगाड़ी और बैलगाड़ी

पर खाने-पीने का सामान, बर्तन-बासन, कुर्सी-सामान सब लाए गए थे। संकल्प लिया गया कि तीन दिन तक बारात को रोककर नटुआ नचाया जाएगा और उसी दरवाज़े पर तड़बोनी वालों को अपमानित किया जाएगा।

खजुरबोनी के व्यवहार से तड़बोनी पक्ष विचलित हो गया। खजुरबोनी के सैकड़ों नवयुवक गाँव के रास्तों पर घूमते रहे। संयोग अच्छा था कि गाँव में मुसरी झा पंडितजी थे।

मुसरी झा पंडितजी का स्वभाव था कि किसी-न-किसी व्यवहारिक कारण से प्रतिदिन किसी न किसी से झगड़ा हो जाता। समाज से वे अकेले पड़ चुके थे। लेकिन उन्हें इसका तनिक भी ग़म नहीं था। वे प्रतिदिन गीता पढ़ते और मानते थे कि गीता शास्त्र नहीं, जीवन का अस्त्र है। उनका विचार था कि जब इंसान अपने आमद-खर्च के संतुलन से जीवन की साधना में लग जाता है, तभी वह जीवन को मस्त और संतुलित बना सकता है।

तड़बोनी के मुखर लोग सोचने लगे कि गाँव की जो दलबल स्थिति बन रही है, वह मुसरी झा के बिना नहीं सँभल सकती। सभी उनके दरवाज़े पर पहुँचे। मुसरी झा ने उन्हें देखते ही कहा-

"किधर सूरज उग आया है कि सब दरवाज़े पर एक-एककर दिखाई दे रहे हो?"

उन्हें पहले ही स्थिति की पूरी जानकारी थी। पर समाज से अलग-थलग पड़े होने के बावजूद वे निडर होकर बोले-

"समाज गलती स्वीकार करे, तभी मैं भार उठा सकता हूँ।"

उनका साहस देखकर ढोलबा झा बोल उठा-

"पंडितजी, क्या आप अकेले गाँव का भार उठा लेंगे?"

मुसरी झा को अपने अध्ययन-मनन पर इतना विश्वास था कि वे

बोले-

"एक आदमी भले ही अगहन में सारे गाँव का धान का बोझ न उठा सके, लेकिन विचारधारा तो ऐसा शाश्वत गुण है जो केवल एक गाँव का नहीं, पूरी दुनिया के धान का बोझ उठा सकती है।"

निर्भीक होकर उन्होंने उत्तर दिया-

"अगर पूरा गाँव मिलकर मुझे भार देगा, तो क्यों नहीं, अकेले मैं गाँव का भार उठा सकता हूँ।"

मुसरी झा की यह तेवर देखकर ढोलबा झा बिना कुछ सोचे बोले-

"आपको पूरा गाँव का भार मिला। जाइए, सँभाल लीजिए।"

पंडितजी के मन में खटका कि ढोलबा झा बुज़ुर्ग आदमी हैं, उनके शब्दों को आधार देना उचित नहीं। लेकिन फिर उनके ही भीतर से दूसरी प्रेरणा उठी कि ढोलबा अकेले नहीं हैं, उनके साथ और भी मुखर और प्रभावशाली लोग खड़े हैं। इसलिए जब सब मिलकर दरवाज़े पर पहुँचे हैं, तो पहले से सब मिलकर एक राय क्यों न बना ली जाए?

पंडितजी के मन ने यह भी कहा कि अब तक जो समाज रहा है, वह ऐसा रहा है जिसकी डोर या तो रेशम की मज़बूत रस्सी की तरह रही है या कच्चे सूत की तरह, जो ज़रा-सा झटके में टूट जाता है। उनके मन में फिर विचार उठा कि हर आदमी का अपना-अपना मनोवेग होता है, उसी के अनुकूल गाँव वाले दबे रहते हैं और बाहरी लोग बढ़ते रहते हैं। बारातियों में भी सब ऐसे नहीं थे जो समाज के मान-अपमान को एक समान भाव से देखते। कहीं कोई घटना घट ही सकती थी जिससे दोनों समाज की नाक कट जाती।

इसलिए अच्छा होगा कि जितनी जल्दी संभव हो, उतनी जल्दी

बाहरी बारातियों को गाँव से आदरपूर्वक बाहर कर दिया जाए। सबको आगे बढ़ने से रोकते हुए मुसरी झा बोले-

"जब गाँव का भार मेरे ऊपर आया है, तो उसका निर्वहन करना मेरा दायित्व है। आप सब अपने-अपने घर जाइए। एक घंटे के भीतर सबके कानों तक अच्छी से अच्छी खबर पहुँच जाएगी।"

हाँ-हाँ करते हुए मुसरी झा ने तम्बाकू-चूना मुँह में लिया और अपने छोटे क़द के बावजूद तेज़ कदम बढ़ाते हुए सीधे उस अग्रदूत के पास पहुँचे, जिनके बेटे की शादी की बारात सज रही थी। पंडितजी को देखकर किसी के मन में शक पैदा होने का सवाल ही नहीं था। इलाक़े के लोग मुसरी झा को पहचानते थे– जैसे छोटा जानवर होने पर भी चूहा चौपायों में सबसे ज़्यादा ताक़तवर हो जाता है, वैसे ही मुसरी झा भी थे।

आदरपूर्वक हिम्मतलाल, जिनके बेटे का विवाह था, बोले-

"पंडितजी, आपका जो आदेश होगा, हम मान लेंगे।"

पंडितजी ने सोचा कि बिना कुछ पूछे-सुने बारातियों को एक झटके में कुछ कहना उचित नहीं। उन्होंने मुँह उठाकर बारातियों की ओर देखा और कहा-

"जिसे जो कहना हो, सामने कहो। मुँह-से-मुँह बात होगी, विचार-विमर्श होगा, तब आगे बढ़ेंगे।"

बारातियों की भीड़ में से फोचाई ने कहा-

"चुनाव में इलाक़े का वोट लूटकर आपके गाँव वाले ले जाते हैं, यह ठीक है?"

मुसरी झा ने उत्तर दिया-

"अब नहीं ले जाएँगे। आगे देखना, आप सब भी समय पर पहुँचेंगे, तो समय का उपयोग सब मिलकर करेंगे।"

इतना कहकर मुसरी झा उठ गए। उनके उठते ही हिम्मतलाल ने हाथ के इशारे से नर्त्तकी को नाच रोकने का आदेश दिया। सारे बाहरी बारात अपने-अपने रास्ते निकल गए।

बाहरी बारातियों को तड़बोनी गाँव की सीमा पार करते ही गाँववालों ने गहरी साँस ली। मगर मुसरी झा के मन में फिर नए विचार उभरने लगे। वे सोचने लगे– गाँववालों ने हमें अग्रदूत बनाकर पिछली घटना में जो मूर्ख बनाया था, उसे तो सह लिया। वह बीते दिन की बात थी। लेकिन अब गाँव के चौक-चौराहे के हीरो लोग भी तो मेरी बात मानेंगे। और अगर नहीं मानेंगे तो मैं क्यों व्यर्थ काम में फँसू?

फिर उनके मन ने कहा-अब तक जो कुछ हुआ वह बीते दिन की बात थी, लेकिन वर्तमान और भविष्य तो सामने खड़ा है। अगर मैं अपने समाज को राह पर नहीं लाऊँगा तो यह आगे चलकर अपमान ही लाएगा। इसलिए अच्छा होगा कि बाहरी समाज के बीच अंतर्राष्ट्रीय कानून की तरह सामाजिक संबंधों को सूत्रबद्ध कर आगे बढ़ाया जाए।

यह सोचते-सोचते मुसरी झा का मन मान गया कि समसामयिक यही रास्ता सबसे अच्छा है।

जब खजुरबोनी के एक-एक बारात तड़बोनी की सीमा से बाहर निकल गई, तब पेड़ों पर छिपे हुए बच्चे-बच्चियाँ भी उतर-उतरकर गाँववालों को समाचार देने लगे। कोई कहता-

“हम आम के पेड़ पर चढ़कर सब लीला देख रहे थे।”

कोई कहता-

“हम शीशम के पेड़ पर चढ़कर देखा कि खजुरबोनी का एक-एक बच्चा सीमा पार कर गया।”

बिना बुलाए ही पूरा गाँव, यानी तड़बोनी के लोग, मुसरी झा के पास आकर जुट गए। मुसरी झा और खजुरबोनी वालों के बीच जो

संवाद हुआ था, उसे सुनकर लोगों में खुसुर-फुसुर शुरू हो गई। भीड़ देखकर मुसरी झा का मन विचलित होने लगा। जहाँ-जहाँ नज़र डालते, वहाँ भीड़-ही-भीड़ दिखती। उन्हें कहीं कोई खाली जगह नज़र नहीं आता थी।

पंडितजी के मन में उठने लगा कि जैसे खेत की कोड़ाई से ऊपरी परत पतली हो जाती है, वहाँ कुछ करना या कहना बच्चों का खेल थोड़े ही है।

पंडितजी को गुमसुम देखकर टेंगरलाल बोले-

"पंडितजी, क्या विचार किया है, हम सबको बताइए।"

पंडितजी मन ही मन सोच रहे थे कि मकई का भुजा नहीं है कि बिना किसी जोड़-तोड़ के सब लावा ही लावा हो जाए। समाज तो दाल की खोंइचा जैसा है– इतना मोटा खोंइचा कि बिना जत्ता में दररने से काम कैसे चलेगा। यह तो आगे चलकर ही दिखेगा। शर्म और संकोच से पंडितजी चुप हो गए।

उनके मन में उठ रहा था– एक गाँव का समाज दूसरे गाँव के समाज से जो संबंध-रिश्ता, भोज-भात, खेत-खलिहान और नाच-गान से जुड़ा है, वह कैसे समयानुकूल चलता रहेगा। यह न तो एक दिन का विचार है और न ही एक काम का फल। वैज्ञानिक विकास ने इतनी तेज़ी से छलाँग लगाई है कि दुनिया की सबसे बड़ी-बड़ी कंपनियाँ रातों-रात खड़ी हो जाती हैं और उतनी ही जल्दी ढहकर दिवालिया भी हो जाती हैं।

अपने मन को शाँति देते हुए मुसरी झा बोले-

"भाइयों, बाहरी लोगों को देखकर गाँव इतना विचलित हो गया कि पत्नी की हालत बेहोशी की हो गई है। इसलिए पहले उसे सँभालने दीजिए। बात-चीत कभी भी हो सकती है, बाद में कर लेंगे।"

पड़ोसी की बीमारी का नाम सुनते ही जैसे समाज के लोग अचानक अपने-आप बीमार पड़ जाते हैं, वैसे ही पंडितजी की पत्नी की बीमारी सुनकर सब रोगी बन कर वहाँ से निकल गए।

तड़बोनी की उस घटना के दो साल बाद कमलपुर में दूसरी घटना भी बारात के समय हुई। अगली दुर्गापूजा छह महीने बाद थी और पिछली दुर्गापूजा छह महीने पहले हो चुकी थी।

हुआ यह कि कमलपुर के जीवनलाल की बेटी का विवाह घुसकीपट्टी गाँव के शुभकलाल के बेटे से तय हुआ। दोनों गाँवों की दूरी चार कोस थी। एक-दूसरे के बीच संबंध-रिश्ता पहले से चलता आ रहा था, आज भी है। ज़्यादातर जातियों के बीच यह होता है। लेकिन घुसकीपट्टी की स्थिति कमलपुर जैसी नहीं थी। जातीय संख्या के आधार पर वहाँ कुछ जातियों का वर्चस्व था। उसी कारण बाहरी लोगों की नज़र में वह गाँव अच्छा भी लगता था और वर्चस्वपूर्ण भी।

वैसे घुसकीपट्टी का कमलपुर से एक और संबंध था– जातिगत भोज का। इक्कीस गाँवों की जो जातीय बिरादरी थी, उसे ‘सभा’ भी कहा जाता था। लेकिन वह सभा सभी जातियों की नहीं थी। कारण यह था कि कमलपुर की कुछ जातियाँ खुद को उच्च कुल की मानती थीं और घुसकीपट्टी वालों को निम्न कुल का। इस कारण संबंध-रिश्ता और सभा स्तरीय का भोज नहीं होता था। हाँ, कुछ जातियों के बीच सभैती और जवारी का भोज होता था, क्योंकि वे खुद को एक ही स्तर का मानते थे।

लेकिन यह सब आम जनता से उतना सरोकार नहीं रखता था। जब भी दोनों गाँवों के बीच संबंध-रिश्ता और भोज-भात होता, तो अनावश्यक झगड़े उठाना उचित नहीं माना जाता।

शुभकलाल के बेटे का विवाह जीवनलाल की बेटी से तय हुआ। शुभकलाल का बेटा बी.ए. पास था, जबकि जीवनलाल की बेटी ने

स्कूल का मुँह भी नहीं देखा था। उस समय का वातावरण भी ऐसा ही था। लड़कियों की शिक्षा समाज में दशांश प्रतिशत से भी कम थी। वह भी कुछ खास जातियों तक सीमित थी। बाकियों में तो शिक्षा का नामों-निशान तक नहीं था।

हाँ, कुछ लोग बाहर नौकरी करते थे और वहीं परिवार रखकर बेटियों को थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा देते थे। विवाह के समय पढ़ाई-लिखाई का सवाल ही नहीं उठता था।

जीवनलाल के मन में भीतरी खुशी थी कि पढ़ा-लिखा बेटा तुल्य दामाद मिलेगा और पढ़े-लिखे पति के साथ रहने से बेटी का भविष्य भी अच्छा रहेगा। इसलिए विवाह को अच्छे से सम्पन्न करना था। उस समय नकद-नारायण (दहेज) का लेन-देन भी सभी जातियों में रोग की तरह नहीं फैला था। कुछ जातियों में चलन शुरू हुआ था, पर जीवनलाल की जाति में नहीं।

बारात के व्यवस्था की चर्चा उठी तो जीवनलाल ने पाव भर सरसों लाकर शुभकलाल के सामने रख दिया और बोले-

"इसे गिन लीजिए और उसी हिसाब से बारात लेकर आइए।"

सीमा पर स्थित घुसकीपट्टी गाँव से लड़के के विवाह के लिए एक पालकी की व्यवस्था की गई। गाँव के बाजे में पिपही की जगह शहनाई थी, इसलिए शहनाई भी बजाई गई। गाँव में मात्र तीन टायरगाड़ियाँ और सोलह कठही गाड़ियाँ थीं। समाज का काम होने से सबने इन्हें उपलब्ध करा दिया।

बारातियो के लिए जबरदस्त व्यवस्था शुभकलाल ने की। जिस तरह शुभकलाल ने अपना बेटा विवाह में अर्पित किया, वैसे ही जीवनलाल ने भी समाज की प्रतिष्ठा को बनाए रखा।

शुभकलाल ने सावधानी बरती और विवाह से दस दिन पहले

ही जीवनलाल को संदेश भेजा कि एक जाति की बारात नहीं, बल्कि समाज की अनेक जातियों के लोग बारात में आएँगे।

संदेश से जीवनलाल मन-ही-मन समझ गए कि जब सभी जातियों की बारात आएगी, तो सभी तरह के खाने-पीने और रहने की व्यवस्था करनी होगी। जैसे राष्ट्रीय स्तर के किसी कार्यक्रम में सब कुछ उस स्तर से ध्यान रखा जाता है।

इसी सोच के साथ जीवनलाल मंगलदेव के पास विचार-विमर्श करने पहुँचे और वहाँ रामकिसुन को भी बैठे देखा।

दोनों को देखकर जीवनलाल बोले- "शुभ संकेत हो गया, एक ही जगह दोनों भूप मिल गए।"

जीवनलाल की बात सुनकर मंगलदेव मन ही मन सोचने लगे कि हमारे यहाँ तो भटियाही बोली का चलन हमेशा रहा है, शायद जीवनलाल उसी ढंग से बोल रहे हैं। भटियाही बोली का अर्थ है– कभी बढ़ाकर कहना, कभी घटाकर कहना। जैसे हमारे यहाँ उत्तम गाँव ननौर को कहा जाता है। पर इससे पहले यह भी समझ लेना होगा कि गाँव का अर्थ है– उसका भौगोलिक स्वरूप, जो मिट्टी और पानी से जुड़ा होता है। इसलिए ननौर की ज़मीन के पानी की परत कितनी नीचे है, यह भी चर्चा में आएगा। अगर लोगों के हिसाब से गाँव का नामकरण होगा तो वह गाँव समाज के रूप में होगा।

खैर, एक ही समूह के लोग तीनों भूप अर्थात् मंगलदेव, रामकिसुन और जीवनलाल बैठे थे, तो बातचीत का क्रम चलता ही रहा। रामकिसुन ने हँसते हुए कहा-

"जीवन भाई, आपने तीसरे भूप का नाम क्यों छिपा लिया?"

वातावरण शांतिपूर्ण दिशा में बढ़ा। जीवनलाल बोले- "मंगल भाई, बारात में सब जातियों के लोग होंगे, इसलिए..."

बीच में रामकिसुन ने टोका- "सब जाति के हों या एक जाति के हों, बारात तो बारात है। कितने भी लोग आएँ, दरवाज़ा तो गाँव में है ही, फिर चिंता कैसी?"

जीवनलाल के मन में भी कुछ खटपट उठ रही थी। सोच रहे थे– बोलते तो सब हैं कि जाति-पाँति कुछ नहीं है, पर यह कुछ नहीं कितने बड़े जाल पसारे हुए है, यह तो एम.एल.ए., एम.पी. के चुनावों में देख ही रहे हैं। जीवनलाल की सोच यही थी: एक ही चीज़ से दोनों काम निकाल लो; माघ में वही कपड़ा ओढ़ लो, और जेठ में वही बिछा लो। इसलिए अपने विचार को दबाकर मंगलदेव बोले-

"खाने-पीने की कोई भारी चिंता नहीं है। दही का भार मकसूदन पर, दुकान का सामान सिंहेसर पर, भोजन बनाने का भार मनोहर पर और स्वागत का भार पूरे समाज पर है, वही ठीक है।"

आज के परिवेश में तो हर काम खाने-पीने और ठहरने के साथ-साथ खिलाने-पिलाने वाले लोग भी उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन 1970-71 ईस्वी के समय ऐसा नहीं था।

बारात आई। दालान-दालान बैठने की व्यवस्था हुई। तीन दरवाज़ों पर अपनी-अपनी समझ से बारातियों की जगह बनाई गई। उस समय की परंपरा के अनुसार लड़की को आँगन के मड़वे में लाकर महिलाओं के बीच प्रक्रिया शुरू होती थी। समाज की सारी ऊर्जा केवल बारातियों के स्वागत में लगी हुई थी। तीनों दरवाज़ों पर शर्बत बाँटा जा रहा था, जलपान वितरित हो रहा था कि बीच में अचानक हल्ला हो गया।

हल्ला सुनकर मंगलदेव पहुँच गए और बोले- "क्यों, हल्ला क्यों हो रहा है?"

देवनाथ ने कहा- "हमारी दोनों जातियों को अलग-अलग दरवाज़े पर बैठने की व्यवस्था की जाए।"

मंगलदेव ने पूछा- “दोनों मिलाकर तो दस-ग्यारह ही लोग हैं, फिर दूसरे दरवाज़े का क्या काम है?”

दोनों जातियाँ, एक पालकी ढोने वाले और दूसरी शहनाई बजाने वाले, इसी बीच का विवाद था।

मंगलदेव यह जानते थे कि बारातियों की मानसिकता हमेशा से रही है कि गाँव को नीचा दिखाएँ। समाज, यानी जिस गाँव में बारात जाती है, वहाँ के लोग अपनी इज्जत और मर्यादा का ख्याल रखते हुए हमेशा शांति का रूप धारण करते हैं। वे सोचते हैं कि जब शांति का वृक्ष रोपेंगे, सेवा और सहनशीलता करेंगे, तब ही फल-फूल की आशा करेंगे। लेकिन इसके लिए पात्र चाहिए। आज के समाज में सुपात्र और कुपात्र को पहचानना आसान नहीं है।

फिर मंगलदेव के मन में आया कि जात-बारात में थोड़ी-बहुत चखचख तो हर गाँव में होती ही है, हमारे गाँव में भी होगी, वही सही है। जैसे बाढ़ आती है और चली जाती है, वैसे ही यह भी टल जाएगा। लोग चिंता क्यों करें। बात केवल इतनी-सी है कि अपने ऊपर जो भी भार पड़ेगा, उसे ईमानदारी से निभाना है।

दोहराते हुए मंगलदेव बोले- “जिसके घर पर बारात ठहरी है, अगर उसके पास दूसरा दरवाज़ा नहीं है, तो क्या होगा?”

देवनाथ ने तत्परता से उत्तर दिया- “दरवाज़ा नहीं है तो क्या हुआ, हम सब बाँस की बारी की छाया में या बगीचे की छाया में बैठ जाएँगे।”

देवनाथ की बात सुनकर मंगलदेव निरुत्तर हो गए। मन में उठने लगा कि इतने बारातियों के लिए दरवाज़ा तो है, पर पाँच-छह लोगों के लिए क्यों नहीं। तभी जियालाल बोले- “मंगल भैया, हमारा दरवाज़ा खाली है, चलिए उधर चलें।”

इधर लखन झा के मुकदमे में जितना सबूत का दम नहीं था,

उससे कहीं ज़्यादा दम माहौल बनाने में लग गया। विरोधी, खासकर रामकिसुन के विरोधी, लखन झा के पक्ष में जुट गए। जैसे सुबह में किसी सियार के चिल्लाने पर दूसरे सियार भी चिल्लाने लगते हैं, वैसे ही लखन झा के पक्ष में गाँव-गाँव से आवाज उठने लगी कि वह ज़मीन उनके पुश्तैनी से चली आ रही है।

दुष्ट स्वभाव के लोग जैसे अपना पैसा खर्च कर दूसरों के पोखर की मछलियाँ नष्ट कर देते हैं, अपना पैसा खर्च कर किसी के घर में पेट्रोल छिड़ककर जला देते हैं, वैसे ही केवल अपना पैसा दूसरों को उजाड़ने में ही नहीं लगाते, बल्कि यही उनका शौक भी होता है। खैर, जो भी हो, लेकिन रामकिसुन के मन में घर इसी तरह बसता था कि 'जोरू-जमीन जोर के नहीं तो किसी और के'। अगर लखन झा अपनी सारी शक्ति इस जमीन के पीछे लगाने को तैयार हैं तो मैं भी अपनी सारी शक्ति इसी में झोंक दूँगा। औरों के ढोल पीटने से क्या होगा? आखिर बारात जहाँ भी रहेंगे, गाँव तो यहीं रहेगा।

अब तक के जीवन में रामकिसुन ने कभी कोर्ट-कचहरी नहीं देखी थी। मात्र 6–7 साल पहले ही मैट्रिक पास हुआ था। गाँववालों के मुँह से कोर्ट-कचहरी के ढेरों किस्से सुने थे– कैसे अदालत में चित से पट और पट से चित हो जाता है। लेकिन अब तक जो लोग कोर्ट-कचहरी के काम करते आए थे, वे सब लखन झा के समर्थक बनकर रामकिसुन के विरोध में अपनी आवाज़ बुलंद कर रहे थे।

संयोग बना कि रामकिसुन डटकर जमीन से लेकर कोर्ट-कचहरी तक, जी-जान लगाकर तैयार हो गया। गाँव के नवयुवकों के बीच पहले ही उसकी अच्छी पकड़ थी, इसलिए साहस के साथ रामकिसुन मैदान में उतर आया। अब तक खेत की उपज भी रामकिसुन ही पा रहा था।

बारह साल की लंबी कानूनी लड़ाई के बाद रामकिसुन को कोर्ट

से अपने पक्ष में डिग्री मिली। जीवन का पहला मुकदमा जीतने के बाद उसका प्रभाव जहाँ नवयुवकों के बीच बढ़ा, वहीं इलाके के मुकदमावाजों पर भी पड़ा।

रामकिसुन की जमीन की डिग्री से लोग उतने प्रभावित नहीं हुए जितना समाज में उसके बढ़ते प्रभाव से हुए। हर रंग-ढंग के लोग समाज में होते ही हैं, और कमलपुर भी इससे अलग नहीं था। गाँव में ऐसे लोग भी थे जो बेवजह रास्ते में काँटेदार पेड़ लगाकर दूसरों को परेशान करते हैं। रामकिसुन के विरोध में एक नया गठित समाज खड़ा हो गया जिसने कोर्ट-कचहरी की पैरवी से लेकर मुकदमे के खर्च तक का भार उठा लिया।

अदालत का तो हाल ही है कि ये किसी नाम का एक अक्षर सुधारने में तीस-चालीस साल लग जाते हैं, वहाँ तो जमीन का मामला था, पचास-साठ साल लगना तय था। उद्देश्य यही था कि रामकिसुन को आर्थिक नुकसान पहुँचाने के साथ-साथ उसके कार्यक्षेत्र को भी प्रभावित किया जाए। लखन झा ने निचली अदालत के फैसले को ऊपरी अदालत में पहुँचा दिया।

मंगलदेव के साथ मिलकर रामकिसुन के प्रभाव में एक नई शक्ति का संचार हुआ। रामकिसुन, जिसने कभी कोर्ट-कचहरी की शक्ल तक नहीं देखी थी, उसने कितने ही अनुभवी वकीलों और दलालों को अलग-चित कर फेंक दिया।

अपनी-अपनी समस्याएँ लेकर गाँव के नवयुवक उठ खड़े हुए। कमलपुर समाज भी तो बीमार पड़ा था। यह समाज हजारों वर्षों की गुलामी में पलकर पनपा था, जिसके कारण तरह-तरह की समस्याएँ उसके विघटन को पकड़े रहती थीं। और ये समस्याएँ इतनी गुच्छित थीं कि उन्हें सुलझाना कठिन था।

एक ओर जातियों के बीच दूरी थी, तो दूसरी ओर एक ही जाति

के अलग-अलग कुलों के बीच भी इतनी खाई थी कि एक ही जाति के लोग भी न तो बेटी-बेटा का संबंध रखते हैं और न ही एक पाँति में बैठकर खाते-पीते हैं।

इन सबके बावजूद कमलपुर के नवयुवकों के बीच चेतना जाग उठी। उन्होंने समझा कि जैसे जातीय विभाजन अनेक रूप में हैं, वैसे ही साम्प्रदायिक विभाजन भी हैं। इसलिए क्यों न मनुष्य को मनुष्य की सीमा पर लाकर उसकी मूल समस्याओं को पकड़ा जाए– जिसका समाधान होने के बाद ही जीवन सही दिशा में बढ़ेगा। जब तक उन समस्याओं का समाधान नहीं होगा, समाज का कल्याण नहीं हो सकता।

मंगलदेव और रामकिसुन की अगुवाई में कमलपुर के सैकड़ों नवयुवक एक विचारधारा से जुड़ गए। रामकिसुन के मुकदमा जीतने से उनकी सोच और मनोबल मज़बूत हुई। निर्भीकता भी बढ़ी। साल-डेढ़ साल के भीतर दर्जनों मुकदमे समाज में उठ खड़े हुए। मुकदमे उठने के बाद कोर्ट-कचहरी की पैरवी से लेकर जेल तक का अनुभव नवयुवकों को होने लगा।

जैसे साम्यवादी विचारधारा के विरोधी उसका विरोध करते रहे, वैसे ही समर्थक भी नए-नए रूपों में आगे बढ़ते रहे। समय के साथ जीवन में बदलाव आने लगा। सामंती विचारधारा और जीवन धीरे-धीरे टूटने-खिसकने लगा और नए समाज का उदय होने लगा।

हाँ, पूर्णतः ढह जाना कठिन था। समाज की विचारधारा कोई वैज्ञानिक क्रिया थोड़े ही है कि रातों-रात राजा को रंक और रंक को राजा बना दे। सामाजिक विचारधारा तो पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। जीवन-पद्धति बदलने में तेजी भले ही आ जाए, लेकिन उसके लिए अनुकूल परिस्थिति तो चाहिए ही। ❑

पाँचवाँ पड़ाव

पच्चीस वर्ष पहले रामकिसुन के शरीर में एक अजीब-सा रोग जन्मा। यह रोग विचित्र था। साल के बारह महीने में छह महीने रोग प्रबल रहता और छह महीने शिथिल। जाड़े के महीने में, आधा अगहन से आधा फाल्गुन तक, रोग का प्रभाव तेज रहता, और गर्मी के तीन महीने पूरी तरह हल्का। रोग को चढ़ने में डेढ़ महीना लगता और उतरने में भी उतना ही समय। यानी कातिक से डेढ़ महीने रोग की चढ़ंत होती और आधा फाल्गुन से डेढ़ महीने उसकी उतार। रोग कुछ और नहीं था, शरीर का पीला पड़ना। जो शरीर गर्मियों में लालिमा लिए होता, वही जाड़े में पाण्डुरोगी की तरह निस्तेज, उजाला हो जाता। मानो शरीर का सारा खून सूख गया हो।

शुरू के दो-तीन साल रामकिसुन ने रोग के आक्रमण पर ध्यान नहीं दिया, पर बाद में डॉक्टरों से राय-मशविरा और इलाज करवाना शुरू किया। लेकिन रोग जस-का-तस बना रहा। अपने ऊपर रोग के असर के बावजूद रामकिसुन रोग को रोग नहीं मानते। उनका जीवन काम के ऐसे रंग में रंगा था कि शरीर की थकान या रोग का बोझ मन पर टिकता ही नहीं था।

पच्चीस साल पहले मेडिकल साइंस का आज जैसा रूप नहीं था। ग्रामीण इलाकों में तो और भी नहीं। एलोपैथी और होम्योपैथी के कुछ डॉक्टर थे, साधारण पढ़े-लिखे युवक प्रैक्टिस करते, जिनके पास गहरी जानकारी नहीं थी। फिर भी लोग उन्हीं के पास जाते। आयुर्वेदिक घरेलू उपचार और ओझा-गुनी की झाड़-फूँक भी समान रूप से चलती थी। तुलसी, हरसिंगार या अदरक जैसी औषधियाँ के

साथ नमक और काली मिर्च मिलाकर उबालकर गाढ़ाकर सर्दी का इलाज किया जाता। घाव पर गंधकी पत्ते का रस लगाया जाता। इसी तरह सैकड़ों उपाय ग्रामीण जीवन में प्रचलित थे। इसके साथ देवी-देवता, गहवर, झाड़-फूक करनेवाले ओझा-मंत्र भी कायम थे।

सरकारी अस्पताल के कुछ एलोपैथी डॉक्टर और कर्मचारी थे, लेकिन स्थिति यह थी कि चाहे रोगी किसी भी बीमारी का हो, अस्पताल में सबको एक ही तरह की दवा मिलती। सरकार की स्थिति भी ऐसी नहीं थी कि वह समाज में फैले रोग का पूरा इलाज दे सके। फिर भी लोगों में यह विश्वास बना रहा कि सरकारी अस्पताल है और इलाज भी मौजूद है।

शुरू में रामकिसुन ने भी इलाज कराया– कभी एलोपैथी की गोली, कभी होम्योपैथी की, कभी आयुर्वेदिक रस, तो कभी ओझा-गुनी से माथा छुआ लिया। रोग को उन्होंने सहचर मानकर जीवन में जगह दी। साल के छह महीने दवा लेते और छह महीने छोड़ देते। पर कभी यह घोषित नहीं किया कि वे रोगी हैं।

उनकी धारणा थी कि रोगी वही होता है जो साधारण सिरदर्द को असाधारण बना लेता है। कुछ रोग हाथ से रगड़ने या तेल से मालिश करने पर शांत हो जाते हैं। लेकिन रोग अपनी चाल और रंग बदलता ही है। रामकिसुन का मत था-

“जहाँ है, जैसा है, वैसा रहने दो। रोग को अपना जीवन बाधित नहीं करने दूँगा। दवा भी लूँगा और दिन-प्रतिदिन के नित्य-काम, अनुष्ठान और कर्मकांड भी करता रहूँगा।”

रोग की भी अपनी विचित्रताएँ होती हैं। कोई रोगी खाने-पीने, ओढ़ने-पहनने और खेल-तमाशे में तो निरोग दिखता है, पर काम के समय बीमार हो जाता है। यह राजरोग नहीं, बल्कि जीवन की विडंबना है।

सन 1974 में बोरिंग-दमकल लाने के बाद रामकिसुन ने अपने जीवन को आधुनिक रूप देना चाहा। दिन-रात जब भी समय मिलता, वे खेती-किसानी के सूत्र तलाशने लगते। किसान का जीवन खेत-खलिहान से जुड़ा होता है, जहाँ आधी रात को भी उसके दिमाग में खेती की गुत्थियाँ सुलझती रहती हैं। यही सूत्र साधना के मंत्रयोग और लययोग बनकर राजयोग की सीमा तक पहुँचते हैं।

रामकिसुन में ऐसी चेतना का उदय हो गया था कि जैसे वह नई पद्धति से कृषि पैदावार करने लगे थे, वैसे ही समाज के बीच–एक ही गाँव के समाज में और अन्य गाँवों के समाज में–कृषि पैदावार की अपनी पद्धति रही है जो व्यवहारिक रूप में चलती आ रही है। इसी से रामकिसुन कृषि फार्मों और संस्थानों पर नज़र रखकर नयी-नयी जानकारी प्राप्त करते और गाँवों के किसानों के बीच पैदावार की चर्चा से भी ज्ञान संग्रह करते।

रेडियो स्टेशन से उन्हें खेतों की माप– हेक्टेयर, एकड़, मीटर– और तौल की इकाइयाँ– टन, क्विंटल, किलोग्राम– की जानकारी मिलती, तो वहीं गाँव की परंपरागत पद्धति– बीघा, कट्ठा, धुर, कनमा, कनई, पौआ, असेरी, सेर, पसेरी, धारा, मन और बोड़ा– का संग्रह भी करते। जीवन के अंतिम समय तक वे पैरों से खेत नापकर बीज बोते और मुट्ठी भर-भरकर बीज का तौल भी करते।

जो कुछ भी वे करते, वह उनका अपना कर्म था। दूसरों से उसका कितना संबंध है, यह तो व्यक्ति-व्यक्ति की बात रही। बातों के क्रम में बड़े-बड़े सत्तासीन भी क्यों न रहे हों, किसान परिवार और किसानी जीवन की प्रतिष्ठा को वे गर्व से ओढ़कर कहते-

“हम भी किसान के पुत्र हैं और पालन-पोषण किसान परिवार में हुआ है।” इसका अर्थ यह नहीं कि आज के किसान का जीवन और परिवार का व्यवहार वैसा ही है। प्रश्न यह था कि जिस समाज में जन्म

हुआ और पालन-पोषण हुआ, वहाँ के किसानों की आज की स्थिति क्या है?

किसानी जीवन न तो केवल एक देश का है और न एक क्षेत्र का, यह तो पूरी दुनिया के हर देश और हर क्षेत्र का जीवन है। मिथिलांचल का जनसमूह आदिकाल से किसानी जीवन जीता आया है और आज भी जी रहा है। कल-कारखानों का न तो समुचित आगमन हुआ और न समाज में बड़ा बदलाव आया। हथकरघा के रूप में थोड़ी-बहुत धंधा जरूर चला, लेकिन वह सीमित ही रहा। जैसे तेलहन से तेल निकालना, कुछ विशेष जातियों का पेशा रहा। रूई से कपड़ा बुनना भी खास जातियों तक सीमित रहा। इसी तरह कई कारोबार थे जो खास जातियों से बँधे रहे।

केवल उद्योग-धंधा ही नहीं, खेती-वारी भी जातियों के बीच बँटी रही। जैसे पान की खेती खास जातियों की मानी जाती और वही करते। सब्जी की खेती भी कुछ जातियों का काम मानी जाती। फूलों की खेती भी माली जाति की कही जाती। बहुत कुछ ऐसा था। पर अगर इन्हीं व्यवसायों को सामूहिक रूप में अपनाया गया होता, या उनका समाजीकरण हुआ होता, तो आज का सामाजिक परिवेश अलग रंग का जरूर होता।

दुनिया के नक्शे पर देखते हैं कि अपने देश भारत की अपेक्षा जापान का भूभाग छोटा है, जनसंख्या भी कम है, लेकिन वह कितना आगे निकल गया और हम कहाँ अटक गए। भारत में भी न तो मिट्टी एक रंग की है, न पानी, न भौगोलिक बनावट। इस कारण किसानों का जीवन भी एकरूप नहीं। कहीं साल भर पानी में डूबा खेत है, तो कहीं पानी की कमी से हाहाकार। मौसम भी क्षेत्र-क्षेत्र में अलग। कोई क्षेत्र साल भर गर्मी में झुलसता है, तो कोई अनेक तरहों के मौसमों का अनुभव करता है।

रामकिसुन का मानना था– कल-कारखानों से आने वाली वस्तुओं की भरपाई हम नहीं कर सकते, क्योंकि न कारखाने हैं, न कच्चा माल। लेकिन भोजन, जो जीवन की मूल आवश्यकता है, उसकी भरपाई तो कृषि से ही हो सकती है। वस्तुतः कृषि से ही कई ऐसी उपज होती है जो कारखानों की भी वस्तु है।

रामकिसुन और मंगलदेव ने परिवार से आगे बढ़कर समाज और सामाजिक जीवन के आर्थिक संसाधनों पर गहराई से विचार किया। तब उन्होंने पाया कि गाँव की उपजाऊ जमीन को अगर परंपरागत पद्धति से थोड़ा आगे बढ़ाकर, उसमें आधुनिकता का अंश लाया जाए, तो उपज कई गुना बढ़ सकती है। जैसे ही खेत की पैदावार बढ़ेगी, जीवन का भरण-पोषण भी सहज हो जाएगा।

सन् 1974–75 तक इतिहास यही रहा कि किसी भी गाँव की उपज इतनी नहीं हुई कि वह गाँव के समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। अगर ऐसा होता तो गाँव के अधिकांश परिवारों में रोज़ शाम को चूल्हा जल पाता। भूखे पेट और दग्ध मन के साथ इंसान यही सोच सकता है कि यह उसकी कर्मचूक नहीं, बल्कि भाग्य-निर्माता की भूल है, जिससे ऐसा जीवन मिला है।

असल में, कर्म को चालबाज़ समूह ने इस तरह गिरा दिया कि जनसमूह कर्म को महत्व नहीं देकर भाग्य-भरोसे पर जीने वाला सामाजिक परिवेश बना बैठा। कहेंगे कि कैसे? लोगों की ज़ुबान पर यही बैठा दिया गया कि अगर श्रम से कुछ होता तो मुसहरों को होता, जो दिन-रात कुदाल चलाते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि अगर कर्म ठीक ढंग से नहीं किया जाए तो गोबर में घी डालने जैसा व्यर्थ हो जाता है, लेकिन इससे कर्म का महत्व समाप्त हो जाए, यह कितना उचित है?

रामकिसुन और मंगलदेव जब गाँव और समाज को सामने

रखकर आगे बढ़ने के विचार पर गौर करने लगे तो दर्जनों रास्तों की रोशनी मन में झिलमिलाने लगी। जैसे ही रामकिसुन के मन में भविष्य के जीवन का प्रकाश उठा, उन्होंने पूछा-

"मंगल भाई, आगे के लिए क्या करना उचित होगा?"

अब तक समाज में कई प्रश्न उठ चुके थे। क्योंकि जब किसी को औषधि की जानकारी होती है, तो उसके साथ बीमारी और वातावरण के असर की चर्चा भी उठती है। कमलपुर में भी जाति और जीवन की भिन्नताओं से अनेक प्रश्न लोगों के मन में उठे। और उठना स्वाभाविक भी था।

मान लीजिए कि आपको किसी धर्मस्थान तक पहुँचना है, वहाँ पहुँचने से पहले यह प्रश्न उठेगा ही कि उस स्थान और जनमानस के स्थान की दूरी कितनी है। यह दूरी सबके लिए एक समान नहीं होती– किसी के लिए कम, किसी के लिए अधिक। इस दूरी के बीच भेद के दुर्गम स्थल भी बन जाते हैं। वही दुर्गम स्थल समाज को बाँधने वाली जकड़न है, जो समाज को ब्रह्मफाँस की तरह जकड़े रहती है।

मंगलदेव बोले-

"रामकिसुन, हजारों समस्याओं में समाज उलझा है। हर किसी की अपनी समस्या भी है और सामूहिक, यानी सामाजिक समस्या भी है। इतनी समस्याओं को एकसाथ सूचीबद्ध कर उन्हें क्रियाशील बनाना कठिन है। लेकिन अगर उन्हें उठाया ही नहीं जाएगा तो समाज समय के साथ आगे कैसे बढ़ेगा?"

मंगलदेव ने किसी समस्या को खोलकर नहीं कहा, लेकिन इशारों में उन्होंने कुछ भी छोड़ा नहीं। रामकिसुन आधा-पक्के आम की तरह कुछ समझे और कुछ नहीं भी समझ पाए। जो समझ पाए, उसमें उन्हें रावण की वंशावली की तरह असंख्य संतानें नज़र आईं। कुछ समस्याओं पर उनकी नज़र ही नहीं गई। अगर जाती तो अवश्य

विचार उठता कि जैसे राजा सगर के साठ हज़ार पुत्र एकसाथ भस्म हो गए थे, वैसा ही यहाँ भी हो सकता है। पर इससे रामकिसुन या मंगलदेव को क्या? बात इतनी भर थी कि जिस समाज में बेटे के रूप में जन्म हुआ, वहाँ घर-घर में ऐसी खुशी की बाढ़ आई मानो भीष्म जैसा पुत्र जन्मा हो।

अपने विचार पर विराम देते हुए रामकिसुन बोले-

“भाई, वर्तमान परिस्थिति में विचार को किस तरह संचालित किया जा सकता है?”

रामकिसुन का प्रश्न सुनकर मंगलदेव के मन में हलचल उठी। कारण यही था कि समाज में हजारों समस्याएँ हैं। अगर उनमें से कुछ को हम पकड़कर कार्यान्वित करें और कुछ समाज भी करे, तो समाधान संभव है। इसलिए सबको अपनी-अपनी समस्या लेकर उठना पड़ेगा। लेकिन कहना कि इन समस्याओं पर विचार ही न हो, यह भी उचित नहीं।

मंगलदेव बोले-

“रामकिसुन, जो सोचा या समझा गया, वह सब कुछ होगा ही, ऐसा नहीं है। और नहीं होगा, यह भी नहीं है। होना तो होता ही है, होना तो होकर रहेगा।”

रामकिसुन ने पूछा-

“तो फिर?”

मंगलदेव बोले-

“हम किसान हैं। किसान कैसे उन्नति करेगा, अभी हमें बस इसी पर विचार करना चाहिए।”

मंगलदेव की बात सुनकर रामकिसुन का मन ठमक गया, पर भीतर ही भीतर सोचा कि जितने लोग साथ बैठकर खाते-पीते हैं और

समाज के लिए सोचते-विचारते हैं, कम-से-कम उतने लोगों के विषय में विचार करना तो उचित होगा। लेकिन तुरंत ही मन ने कहा कि कोसी या कमला धार का बाँध-छहर टूटते ही या अधिक वर्षा होते ही गाँव में बाढ़ आ जाती है। आँगन-घर से लेकर वारी-झाड़ी, खेत-खलिहान तक बच्चे से लेकर बड़े तक बाढ़ में स्नान करते हैं। पर नदी की बाढ़ और वर्षा की बाढ़ में इतना फर्क है, जैसे किसी पोखर में नहाना और किसी नदी में स्नान करना। यहाँ यह समझना आवश्यक नहीं कि कमला नदी का बाँध है या छहर, बल्कि यह छहर है तो कर्ताओं के बीच खुशी न हो, यह कितना उचित है?

रामकिसुन के विचार ऐसे उलझे थे कि वे असमंजस में पड़ गए। लेकिन उन्होंने सोच लिया कि अब तक जो संबंध मंगल भाई के साथ रहे, उसमें जीवन के कटु अनुभव बहुत कम दिखते हैं। तो अगर उनके विचारानुसार न चलें तो वहीं पहुँचेंगे जहाँ समाज में एक-दूसरे से कटकर कोई न साथी बनता है, न भागीदार। यही तो समाज है– जिसे देखना भी है और दिखाना भी है।

रामकिसुन बोले-

“भाई, आप तो ऐसे गुरु-तुल्य हो गए जो दिशा-दर्शन कराते हैं। रोज़ बातचीत हम एक साथ बैठकर करते ही हैं, तो क्यों न आज के समय और परिवेश के समाज पर विचार भी करते चलें।”

रामकिसुन की बात सुनकर मंगलदेव का मन जैसे पाताल के जल सा भर गया। सरल स्वर में बोले-

“रामकिसुन, दुनिया क्या हँसी-ठट्ठा है कि एक जोर लगा देंगे और वृंदावन के झूले पर बैठ बारहमासा गा लेंगे? वृंदावन के कृष्ण के झूले का सुख तभी मिलेगा जब हम कृष्ण बनकर ही कृष्ण को प्राप्त करेंगे।”

मंगलदेव के विचार सुनकर रामकिसुन को जैसे तृप्ति मिल गई,

बोले- “भाई, जैसे ‘हरि अनंत हरि कथा अनंता’ कहकर तुलसी बाबा ने सात अरब जनमानस की कथा एक साथ सुना दी, वैसे ही आपने भी वृंदावन के समाज की गाथा सुना दी।”

रामकिसुन की हृदय-विह्वलता देख, मंगलदेव ने अपने मन को चेताया और सोचा कि जीवन को मोम की तरह पिघलाकर विचार से भागना कायरता होगी। उन्होंने कहा- “रामकिसुन, अभी हमें केवल दो बातों पर विचार करना चाहिए– पहली यह कि कृषि पैदावार में बढ़ोतरी कैसे हो, ताकि पराए देशों का कर्ज भी चुकाया जा सके और अपने समाज के चूल्हे भी रोज़ दोनों वक़्त जलें। और दूसरी बात, यह कि गाँव का जो हथकरघा उद्योग समाप्त हो गया, वह आज के परिवेश में कैसे स्वचालित इंजनों की मशीन बनकर फिर खड़ा हो सके।”

प्रश्न उठने के बाद उसे अच्छे से समझ लेना ही श्रेष्ठ है। इसलिए रामकिसुन मन-ही-मन गहरे विचार में डूब गए। उनके चेहरे की उदासी देखकर मंगलदेव समझ गए कि जैसे किसी कड़वी दवा का घूँट गले में अटकता है, वैसे ही कोई विचार रामकिसुन के भीतर अटक रहा है।

पहले प्रश्न यानी खेती की उन्नति को तो रामकिसुन ने अच्छे से समझ लिया, लेकिन हथकरघा उद्योग को स्वचालित मशीन के रूप में गाँव में स्थापित करने की बात ने उनके मन को उलझा दिया। चेहरे की लाली बदरंग हो गई। गहराई से सोचने पर यह विचार आया कि जैसे बड़ी मशीनें जटिल समस्याओं को सरल बना देती हैं, वैसे ही लघु मशीनें भी बेरोज़गारी के दबाव को कम कर सकती हैं।

रामकिसुन की चुप्पी देखकर मंगलदेव ने कहा-

“रामकिसुन, अपने विचार स्पष्ट क्यों नहीं कर रहे हो?”

असमंजस में पड़े रामकिसुन बोले- “मंगल भाई, आधा विचार तो आधे से ज़्यादा समझा, पर आधा विचार आधे से कम समझ पाया। इसलिए कुछ स्पष्ट नहीं हो रहा।”

जब कोई विचार या कार्य निम्न से ऊँच तक या ऊँच से निम्न तक जाता है, तो बीच की अवस्था को स्पष्ट समझना ज़रूरी होता है। रामकिसुन शायद उसी मध्यावस्था को नहीं समझ पाए थे, इसलिए उनका मन विचार के साथ उलझ गया।

मंगलदेव बोले-

"आधे से ज़्यादा क्या समझे और आधे से कम क्या नहीं समझे? क्योंकि एकसाथ दो प्रश्न हैं।"

रामकिसुन बोले-

"मंगल भाई, खेती की उन्नति की ज़रूरत क्यों है, यह तो थोड़ा-बहुत समझ गया हूँ। जैसे घर में अन्न न होने पर इंसान क्या, जानवर तक कराहते हैं, वैसे ही खेती की पैदावार ज़रूरी है। लेकिन मशीन का विचार अब तक समझ ही नहीं पा रहा हूँ।"

रामकिसुन की बात सुनकर मंगलदेव के मन में हर्ष और विषमय दोनों भाव उठे। हर्ष इस कारण हुआ कि जिस तरह एक निष्कपट व्यक्ति बिना लाग-लपेट अपने विचार कहता है और इस प्रकार अपना पूरा परिचय देता है, वैसे ही रामकिसुन ने कहा। उन्होंने मन में समाज के और लोगों की तरह ज़रा भी कलछप्पन (दिखावा) नहीं रखा, जबकि समाज में बहुत लोग बिना समझे भी किसी विचार या कार्य के पक्ष में ऐसे बोलते हैं मानो वे उसके पूरे अनुभव से गुज़रे हों।

लेकिन मंगलदेव को यह आश्चर्य हुआ कि रामकिसुन भले ही केवल मैट्रिक पास हैं, फिर भी समाज में कार्यकर्ता की तरह नेतृत्व कर रहे हैं। मंगलदेव ने अपने मन को समझाया कि अगर रामकिसुन अभी तक सब नहीं समझ पाए हैं तो क्या हुआ? इस समय कोई और जवाबदेह नेतृत्वकर्ता भी तो नहीं है। भविष्य की ज़रूरतों को देखते हुए धीरे-धीरे समझना ही समाज और उनके अपने लिए हितकर होगा।

जब दुनिया की ओर दृष्टि डाली तो मंगलदेव के मन में पौने दो सौ देशों में से तीन ऐसे देश सामने आए जिनके माध्यम से बहुत कुछ स्पष्ट किया जा सकता था। उन्होंने सोचा– जब लोग अपनी समझ से देखते और विचारते हैं तभी जीवन उन्नति की ओर कदम बढ़ाता है।

मंगलदेव बोले-

“रामकिसुन, दुनिया में अनेक रंगों के अनेक देश हैं। उन सबको जानना आवश्यक भी नहीं और उसके पीछे अपनी सारी शक्ति लगा देना भी उचित नहीं। जैसे बादलों को देखने वाला ऊपर देखता चलता है लेकिन नीचे धरती पर गड़े खाँचों या ईंट-पत्थरों से ठोकर खा जाता है, वैसे ही स्थिति है। इसलिए अभी हमें केवल कुछ पर ही विचार करना चाहिए।”

मंगलदेव के मुँह से तीन देशों का नाम सुनकर रामकिसुन का मन पपीहे की तरह जिज्ञासा से भर गया।

नई जानकारी पाकर जैसे मन में नए विचारों की लहर दौड़ जाती है और आँखों के सामने नया जगत खुल जाता है, रामकिसुन को भी वैसा ही अनुभव हुआ। वे बोले-

“हाँ-हाँ भाई साहब, किसानी दुनिया में जितनी किस्म का अन्न, सब्जी या फल-फूल है, अगर सब कुछ उगाने लगें तो काम आसान हो ही जाएगा। क्योंकि हर चीज़ का अपना समय और अपनी मिट्टी-पानी होती है, जो हर जगह समान रूप से नहीं मिलता। इसलिए अच्छा होगा कि आप इन तीनों देशों की रूपरेखा ही अच्छे से समझा दें, वही हमारे लिए उपयोगी होगा।”

रामकिसुन की बात सुनकर मंगलदेव के मन में संत-सा शांत भाव जागा। निष्पक्ष संत की भाँति वे बोले-

“रामकिसुन, जापान, इंग्लैंड (ब्रिटेन) और नेपाल– ये तीनों ही

छोटे देश हैं और इनकी जनसंख्या भी कम है। परंतु इन तीनों के अपने-अपने जो गुण हैं, उन्हें जान लेने से दुनिया के अनेक देशों की बहुत-सी बातें समझी जा सकती हैं। इसलिए इन तीनों का उल्लेख अधिक उपयोगी होगा।"

रामकिसुन का मन अब भी उन पौने दो सौ देशों की ओर भटक रहा था, जिनके नाम उन्होंने सुने थे। लेकिन जब तीन देशों को अधिक उपयोगी बताया गया तो वे सहमत होकर बोले-

"नेपाल तो हमसे सटा हुआ देश है। वह किसी बाहरी शासक के अधीन तो नहीं रहा, लेकिन अपने भीतर अवश्य वैसा शासन रहा, जैसा किसी देश में बाहरी शासक का होता है।"

शासन के बाहरी और भीतरी भेद को समझने की जिज्ञासा उनके मन में उठी, पर विषय से भटकाव न हो इसलिए उसे रोककर बोले-

"मंगल भाई, शासन की बात छोड़िए, बस इतना बताइए कि इन तीनों देशों के लोगों का जीवन कैसा है।"

रामकिसुन के विचार सुनकर मंगलदेव का भी मन मान गया कि मनुष्य का जीवन ही किसी देश का सबसे सही परिचय देता है। इसलिए उन्होंने कहा कि तीनों के केवल आर्थिक स्रोतों की चर्चा करेंगे।

मंगलदेव बोले-

"रामकिसुन, पहले तीनों देशों की आर्थिक बुनियाद जान लो, फिर उनके गुण-दोष पर बात करेंगे।"

रामकिसुन ने पूछा-

"वो बुनियाद क्या हैं?"

मंगलदेव बोले- "नेपाल सोलहों आने कृषि-आधारित देश है।

वहाँ तराई क्षेत्र भी है और पहाड़ी क्षेत्र भी। जीवन पूरी तरह भूमि की उपज पर आधारित है। उद्योग के नाम पर केवल कुछ गिनी-चुनी कृषि-आधारित चीनी मिलें और चावल-दाल-तेल की मिलें हैं।”

बीच में रामकिसुन बोले-

“बस इतना ही है?”

मंगलदेव ने कहा-

“हाँ। दूसरा देश है इंग्लैंड (ब्रिटेन), जहाँ कृषि नगण्य है और कल-कारखाने जीवन का मुख्य आधार हैं। और तीसरा है जापान, जहाँ उन्नत कृषि भी है।”

अनायास ही रामकिसुन के मुँह से निकला–

“तो सबसे अच्छा तो जापान ही है।”

मंगलदेव ने पूछा-

“ऐसा क्यों मान लिया?”

रामकिसुन बोले-

“मनुष्य के जीवन का मुख्य आधार भोजन ही तो है। अगर वह अपने हाथ में हो तो मनोनुकूल पैदावार भी करेंगे और संतुलित भोजन भी करेंगे। हाल ही में सुना है कि जापान में ऐसी किस्म का आम होता है जो दुनिया में सबसे सुंदर और सबसे महँगा है। उसका नाम है ‘मियाजाकी’, जो जापान और फिलीपींस दोनों में होता है।”

सबसे सुंदर आम की चर्चा सुनते ही रामकिसुन को अपने देश के आम याद आ गए। याद आया कि मध्यप्रदेश के जबलपुर में भी मशहूर आम हैं। पर जिस काम के लिए वे घर से निकले थे, वही अधूरा रह रहा है, यह सोच उनके मन में बेचैनी भर गई। उन्हें लगा कि बातचीत में समय गँवाना जीवन के साथ खिलवाड़ होगा। हाँ, दुनिया की जानकारी भी जीवन में महत्व रखती है, लेकिन यदि वही अभी

प्राप्त करने में लग जाएँ तो वर्तमान जीवन पिछड़ जाएगा। और जब वर्तमान का काम पीछे रह जाएगा, तो समय के साथ जीवन भी छूट जाएगा। इसलिए समय को थामकर, उसके संग जीवन को आगे बढ़ाना ही सही जीवन है।

रामकिसुन के विचारों में मोड़ आया। वे बोले-

“मंगल भाई, वैसे दुनिया को जाने बिना अपने-आप को जानना संभव नहीं, और अपने-आप को जाने बिना दुनिया को भी सही तरह नहीं जाना जा सकता। पर अभी का समय देखिए– बरसात पहले ही शुरू हो गई है। इससे भले ही अन्य कर्म-आधारित जीवन अधिक प्रभावित न हुआ हो, पर किसानी जीवन के लिए तो यह कुठाराघात है। ऐसे समय में अगर खुद को सजग-सचेत न बनाएँ तो जीवन हार ही जाएगा। इसलिए अब बातचीत को विराम दें। खेत में जो बीज बोए थे, वे डूब गए हैं। उसी में से पानी निकालकर फेंकना है, इसलिए अब चलें।”

मंगलदेव का मन पहले से ही तैयार था कि रामकिसुन को लघु उद्योग का महत्व अच्छे से समझा दें– कि अपने यहाँ उसकी कितनी संभावना है और उससे देश की स्थिति कितनी सुधर सकती है। पर रामकिसुन को उतावला होता देखकर उन्होंने सोचा कि किसी विषय की जानकारी लेते समय अगर दूसरा विषय मन को खींच ले तो असली बात समझने में बाधा आ ही जाती है। मन को सँभालते हुए मंगलदेव बोले- “रामकिसुन, तुम्हारे काम का महत्व देखकर मेरा मन पूरा राज़ी हो गया है। तुम काम की ओर बढ़ो। पर तीनों देशों की जानकारी भी अपना महत्व रखती है। इसलिए थोड़ा-सा समय और दो, मैं अपने विचार को संक्षेप में कह देता हूँ।”

मंगलदेव की बात सुनकर रामकिसुन ने सोचा कि जिसकी जानकारी अपने पास नहीं है, उसका महत्व भी आँक नहीं पा रहे हैं,

इसलिए वह महत्वहीन लगता है। लेकिन मंगलदेव भाई जरूर उस तह को जानते हैं, इसलिए ज़ोर दे रहे हैं। अच्छा होगा कि अपने काम को थोड़ी देर टालकर उनके विचार सुन लें, जीवन के लिए उपयोगी ही होगा। रामकिसुन बोले-

"मंगल भाई, जैसे बाज़ार में जेब में कम पैसे रहते हुए कई उपयोगी वस्तुएँ देखकर मन सामंजस्य करता है कि क्या लेना उचित होगा, वैसे ही आप भी कह दीजिए।"

रामकिसुन की यह विवशता सुनकर मंगलदेव ने अपने विचार को सँवारकर ऐसे प्रस्तुत किया जैसे बाँस को छीलकर चिकना और उपयोगी बना दिया जाता है। वे बोले-

"रामकिसुन, जिस गाँव के हम बाशिंदे हैं, वह भौगोलिक दृष्टि से जापान के गाँव से कहीं अधिक सुंदर है। पर जब जीवन के प्रश्न पर विचार करेंगे, यानी मनुष्य के जीवन पर, तब पाएँगे कि हम जापान के जीवन की तुलना में इतने खराब हैं कि दोनों को सामने रखकर देखेंगे तो हमारा मन खुद हमें धिक्कारेगा।"

मंगलदेव की बात सुनकर रामकिसुन के मन में जैसे उछाल आया। वे बोले-

"मंगल भाई, ज़रा-सा विस्तार से, तह-दर-तह बताइए।"

रामकिसुन की जिज्ञासा देखकर मंगलदेव समझ गए कि अब उनका मन तैयार है। उन्होंने सोचा कि अब अपने गाँव के लघु उद्योग की संभावनाएँ साफ़ कर दी जाएँ। वे बोले-

"रामकिसुन, अपने यहाँ जैसी मिट्टी, पानी और मौसम है, वैसा दुनिया के किसी और देश में नहीं है। इसलिए खेतों की पैदावार की संभावना असीमित है।"

मंगलदेव की बात रामकिसुन ठीक से समझ नहीं पाए, पर

समझने की चाह अवश्य जागी। वे बोले-

“मंगल भाई, ज़रा स्पष्ट-सी भाषा में बताइए, जो आपके मन में है वही मनमाफ़िक समझा दीजिए।”

रामकिसुन की यह बात सुनकर मंगलदेव का मन भी कसमसा उठा। कारण यह था कि अब अनेक प्रश्न सामने आ जाएँगे। जैसे अपने यहाँ की मिट्टी-पानी की तुलना, वैसे ही अपने देश और जापान की भौगोलिक स्थिति जाननी होगी। और सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण– अपने यहाँ और जापान के मनुष्य के बीच मानवीय शक्ति की दूरी। मंगलदेव ने मन ही मन सोचा कि क्यों न रामकिसुन को समय रहते बाँध लें।

मंगलदेव बोले-

“रामकिसुन, दो देशों की बात है तो बातें भी बहुत होंगी। तुम्हें बीज से पानी निकालने जाना है, तो तुम ही कहो कि किस विषय को समझना चाहते हो?”

रामकिसुन की स्थिति वैसी थी जैसे भूखे को थोड़ा-सा भोजन मिल जाए– तृप्ति भी हो और अतृप्ति भी। एक ओर मन की भूख खींच रही थी, दूसरी ओर शरीर की आवश्यकता भी। सामंजस्य करते हुए रामकिसुन बोले-

“मंगल भाई, न आप कहीं भागे जा रहे हैं न मैं। जापान का विषय बाद में अच्छे से समझ लेंगे। अभी तो देख रहे हैं कि समय कैसे बिगड़ गया है, तो अगर जीवन को उसके अनुकूल नहीं बनाया तो जीना कठिन होगा। इसलिए अच्छा होगा कि अभी तो इतना ही बता दें कि हमारे भविष्य की क्या संभावनाएँ हैं।”

रामकिसुन की बात सुनकर मंगलदेव के मन में भी यह विश्वास पक्काहो गया कि रामकिसुन सही बात समझना चाहते हैं। परंतु अपेक्षित गंभीरता से समझ पाना, उनकी स्वयं की हड़बड़ी के कारण

संभव नहीं हो पा रहा था। फिर भी उन्होंने सोचा कि यदि भविष्य की संभावनाओं की ओर संकेत कर देंगे तो रामकिसुन स्वयं ही उसे खोद-खोदकर निकालना चाहेंगे। और क्यों न एक ईमानदार विचारवान की तरह विषय को ईमानदारी से तत्काल प्रस्तुत कर दें।

मंगलदेव बोले-

“रामकिसुन, एक साथ दो प्रश्न हैं। इसलिए एक का संक्षिप्त परिचय दूँगा और दूसरे का विस्तृत।”

सहमति जताते हुए रामकिसुन बोले-

“भाई साहब! किसी भी विषय को सोलहों आने समझना न सुनने वाले के लिए संभव है और न कहने वाले के लिए। विषय वही है जो दोनों के बीच सामंजस्य बैठा सके। इसलिए समय देखकर संक्षेप में समझा दीजिए, आगे अवसर मिलने पर और विस्तार से बताएँगे।”

मंगलदेव बोले-

“रामकिसुन, जैसे मनुष्य का जीवन संभावनाओं से लबालब है, जहाँ जो अपने लक्ष्य को ईमानदारी से पकड़ संकल्पित होकर चलता है वह पा लेता है, वैसे ही गाँव-समाज भी संभावनाओं से भरा है। ज़रूरत है...”

मंगलदेव अपनी बात पूरी भी न कर पाए थे कि बीच में ही रामकिसुन बोल उठे-

“मनुष्य के जीवन की क्या संभावना है, भाई साहब?”

मंगलदेव मुस्कुराए-

“रामकिसुन, तुम तो अपने काम के कारण सुनना ही नहीं चाह रहे हो, तो फिर...”

रामकिसुन बोले-

“संक्षेप में ही कह दीजिए।”

मंगलदेव ने कहा- “जैसे मनुष्य के आगे असीम संभावना है कि समयानुकूल जो करना चाहे कर पाए, वैसे ही हमारे गाँव और दूसरे गाँवों में भी असीम संभावना है। किसान के जीवन में जो काम अब तक हाथों से होता आया है, उसे धक्का देकर ऐसे स्वचालित मशीन तक पहुँचा देना है, जैसा जापान के लोगों ने किया है। वहाँ उत्पादन चाहे मशीन का हो या खेत का, दोनों ही इतने आगे बढ़ गए हैं कि पूरी दुनिया उनसे सीख ले रही है।”

मंगलदेव की बात सुनकर रामकिसुन बोले- “अभी क्या करें?”

मुस्कुराते हुए मंगलदेव ने कहा- “कुछ नहीं, बस जीवन को पकड़कर भूमि में स्थापित करो, आगे देखते हुए अपने पाँव बढ़ाओ। जहाँ खड़े हो, झुके हो, बैठे हो या गिरे हो– उसी जगह से जीवन का आधार बनाकर उठो और आज से ही चलने-दौड़ने की कोशिश करो।”

रामकिसुन बोले- “अब जा रहा हूँ।”

मंगलदेव वहाँ से विदा हुए, पर रामकिसुन के मन में जीवन के प्रति तूफ़ान उठ गया। अनेक संकल्प और विकल्प उमड़ने लगे। पर समुद्र में गहराई का अंदाज़ा भले न लगे, फिर भी जीने की चाह मनुष्य में रहती ही है। जैसे दुनिया में सात अरब लोग हैं, उनमें से एक वह भी हैं। जैसे सबको जीवन चाहिए, वैसे ही उसे भी। और ऐसा जीवन चाहिए जिसमें जन्म का दुख (जन्म के समय का कष्ट) और मृत्यु का दुख (प्राण छूटने का कष्ट) भुला दिए जाएँ और कर्ममय जीवन की धारा में बहते रहें।

अपने संकल्प के साथ रामकिसुन ने अपने जीवन को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया और उसी जीवनधारा में कूद पड़े। समय के साथ वे ‘बरहमसिया किसान’ बनकर गाँव में खड़े हो गए।

समाज से जुड़े रामकिसुन समाज के सुख-दुख में भी सहभागी बनने लगे। कमलपुर का समाज पहले ही बाढ़ की लहरों की तरह हिल

उठा था। जीवन में जितने लोग, उतनी समस्याएँ, और उन समस्याओं का जाल हर किसी को जकड़े था। यह जाल न तो आसानी से टूट सकता था और न ही खोलकर नया बनाया जा सकता था। सदियों से टूटा-फूटा समाज रहा है। वहाँ हाथ पर हाथ धरकर सुधार संभव नहीं। रामकिसुन दर्जनों मुकदमों में मुद्दालह बनकर खड़े हुए।

अपने संकल्प, अपने विचार और अपने श्रम को आगे रखकर रामकिसुन जीवन की धारा में कूद गए। श्रम के हिसाब से उन्हें आर्थिक क्षेत्र में जितनी उन्नति होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई, लेकिन वैचारिक क्षेत्र में इतनी उन्नति अवश्य हुई कि समाज में अपने विचार रखकर आगे बढ़ते रहे। पर आर्थिक क्षेत्र में वे कमज़ोर ही रहे। मुकदमों का ख़र्च और सामाजिक कामों की ज़िम्मेदारी ने उनके अपने काम में बाधा डाली।

सुबह, यानी सूर्योदय से पहले, जैसे रामकिसुन रोज़ अपने खेत देखते और दिन का काम निर्धारित करते, वैसे ही आज भी देखा। उन्होंने निश्चय किया कि पंद्रह धुर का छोटा-सा खेत, जो चौमास खेत कहलाता है, उसे आज पलट देना है। अभी खेत में नमी ज़्यादा है, इसलिए एक दिन धूप लगने पर ज़मीन तैयार हो जाएगी। तब गोला फोड़कर हल चलाएँगे और अगली फसल की तैयारी करेंगे।

वहीं खेत जोतकर रामकिसुन ग्यारह बजे घर लौटे, नहाकर खाने बैठे। सामने सुगंध से महकता कटहल का कोआ रखा था। सामान्य दिनों की अपेक्षा उन्होंने कुछ अधिक ही खा लिया। कारण भी दो थे– एक तो स्वादिष्ट भोजन का आकर्षण, और दूसरा तीन घंटे की कठोर मेहनत।

लेकिन वही कटहल पेट में जाकर इस तरह फूल गया कि गैस बनते-बनते उनकी चेतना ही शून्य हो गई। ❑

अंतिम पड़ाव

रामकिसुन के दाह-संस्कार के तीसरे दिन सूर्योदय से पहले ही मंगलदेव बिस्तर पर उठकर बैठ गए। रात भर आँखें मूँदते ही रामकिसुन का चेहरा उनके सामने आ जाता। कभी दोनों खेत की मेड़ पर बैठकर बातचीत करते दिखाई देते, तो कभी किसी सभा-जुलूस में नारे लगाते। कभी अदालत के बरामदे में बैठकर मुकदमे की अगली तारीख की प्रतीक्षा करते नज़र आते, तो कभी बोरिंग का पानी खेत में पहुँचता देखकर दोनों के चेहरों पर उभरी खुशी याद आती। आँखें खुलते ही सब कुछ विलीन हो जाता और एक वाक्य कानों में गूँजने लगता- "मंगलदेव भैया से कह देना कि परिवार का ध्यान रखते रहें।"

रामकिसुन के परिवार को देखना। कहना आसान था, लेकिन किस रूप में? परिवार के सभी काम अपने हाथ में उठा लें या उसे अपने पैरों पर खड़ा होने में सहयोग दें? इसके साथ रामकिसुन की दूसरी बात भी थी कि मृत्यु के बाद के क्रिया-कर्म मंगलदेव के विचार के अनुसार किए जाएँ। दाह-संस्कार तो निर्विघ्न सम्पन्न हो गया था, लेकिन असली परीक्षा अब शुरू होनी थी। छोर-झप्पी के बाद नख-बाल कटवाने का प्रश्न उठेगा, विधि-विधान का प्रश्न उठेगा और भोज-भात का प्रश्न भी उठेगा। रामकिसुन जीवन भर जिन रूढ़ियों के विरोध में खड़े रहे, उनकी मृत्यु के बाद यदि वही रूढ़ियाँ उनके परिवार पर फिर से लाद दी गईं तो प्रश्न केवल क्रिया-कर्म का नहीं रहेगा। प्रश्न यह भी उठेगा कि समाज ने उनके जीवन भर के विचार और संघर्ष को सचमुच समझा भी था या नहीं।

मंगलदेव मुँह-हाथ धोकर दरवाजे पर आए। पूरब की ओर भोर की लालिमा फैलने लगी थी। ओस से भीगी घास पर पैर पड़ते ही

ठंडक देह में उतर जाती थी। उन्होंने सुवंशलाल को आवाज दी- सुवंश, जाग गए हो?”

अपने आँगन से सुवंशलाल ने उत्तर दिया- “हाँ काका, अभी-अभी उठा हूँ।”

मंगलदेव ने कहा- “चलो, रामकिसुन के यहाँ चलना है।”

कुछ ही देर में सुवंशलाल तैयार होकर सड़क पर आ गया। दोनों चुपचाप रामकिसुन के दरवाजे की ओर बढ़े। दूसरे दिनों में जिस रास्ते पर रामकिसुन से भेंट होते ही कोई-न-कोई बात शुरू हो जाती थी, आज उसी रास्ते पर दोनों के पैरों की आवाज भी भारी लग रही थी।

रामकिसुन के दरवाजे पर कल तक लगी भीड़ अब कम हो गई थी। दूर-दूर से आए लोग लौट चुके थे। पाँचों बहनों में से कुछ अब भी रुकी हुई थीं। तीनों विवाहित बेटियाँ भी माँ के पास रहने के लिए ठहर गई थीं। चौथी बेटी घर के कामों में माँ का हाथ बँटा रही थी। विद्यालय में पढ़ने वाला बेटा दरवाजे के एक कोने में बैठा उँगली से मिट्टी पर रेखाएँ खींच रहा था। मंगलदेव को देखते ही वह उठकर खड़ा हो गया, लेकिन मुँह से कुछ न बोल सका।

जहाँ रामकिसुन का मृत शरीर रखा गया था, वहाँ की मिट्टी पर अब भी एक अलग निशान बना हुआ था। मंगलदेव कुछ क्षण उसी ओर देखते रहे। उनके मन में विचार आया कि देह का सम्बन्ध कितना विचित्र है! जब तक उसमें प्राण रहता है, तब तक घर-दरवाजे, खेत-खलिहान और समाज के बीच उसका अपना स्थान रहता है। प्राण छूटते ही उसी देह को घर में एक रात रखना भी कठिन लगने लगता है। लेकिन उस देह में जन्मे विचार यदि समाज के मन में अपना स्थान बना लें तो पीढ़ियों तक जीवित रह सकते हैं।

जीवनलाल ओसारे से उतरते हुए बोले- “भैया, अच्छा हुआ कि सुबह ही आ गए। आज दियादी-परिवार के लोगों ने बैठक करने को

कहा है। आगे के विधि-विधान पर विचार होगा।"

मंगलदेव ने पूछा-

"बैठक में केवल परिवार के लोग रहेंगे या समाज के लोग भी?"

जीवनलाल ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा-

"दियादी तो रहेंगे ही। समाज में जो लोग रामकिसुन भैया के साथ रहे और जो उनके विरोध में रहे, दोनों तरह के लोग आने वाले हैं। बात भी दो धाराओं में बँटी हुई है।"

मंगलदेव ने कहा- "दो धाराओं में बँटी बात एक जगह बैठने के बाद ही स्पष्ट होगी। परिवार की स्त्रियों और बेटे-बेटियों को अलग मत रखना। मामला जिस परिवार का है, पहले उसी परिवार की बात सुनी जाए।"

जीवनलाल ने सिर उठाकर मंगलदेव की ओर देखा। उन्हें लगा कि मंगलदेव पहले से कुछ सोचकर आए हैं, लेकिन उन्होंने क्या सोच रखा है, यह अभी कहना कठिन था।

नौ बजे तक दरवाजे पर लोग जुटने लगे। कुछ ओसारे पर बैठे, कुछ आम के पेड़ के नीचे और कुछ दरवाजे के सामने की खुली जगह में। लोगों के बैठने की जगह में भी उनके विचारों की दूरी दिखाई दे रही थी। रामकिसुन के विचारों से सहमत लोग एक ओर बैठे थे, परम्परागत कर्मकांड के समर्थक दूसरी ओर और कुछ लोग बीच में इस तरह बैठे थे कि दोनों पक्षों की बात सुनने के बाद अपना विचार बनाएँगे।

बैठक आरम्भ करते हुए जीवनलाल ने कहा-

"भाइयो, रामकिसुन भैया अब हमारे बीच नहीं हैं। उनका दाह-संस्कार सम्पन्न हो चुका है। आगे जो काम शेष हैं, उन पर विचार करने के लिए हम सब यहाँ जुटे हैं। भैया अपने अंतिम समय में कह गए थे

कि क्रिया-कर्म मंगल भाई के विचार के अनुसार करना। इसलिए पहले उन्हीं का विचार सुना जाए।”

दियादी में से एक वृद्ध ने कहा-

“मृत्यु-संस्कार किसी एक व्यक्ति के विचार से नहीं चलते। यह समाज की बनाई हुई विधि है। बाप-दादा के समय से जैसे होता आया है, वैसे ही होगा। नख-बाल कटवाना, एकादशा, द्वादशा, सपिंडीकरण और भोज-भात, सबका अपना विधान है। यदि सब कुछ छोड़ देंगे तो समाज क्या कहेगा?”

वृद्ध की बात समाप्त होते ही एक युवक बोल उठा-

“समाज क्या कहेगा, केवल यही सोचेंगे? रामकिसुन काका जीवन भर क्या कहते रहे, इस पर विचार नहीं करेंगे?”

युवक की ओर देखते हुए वृद्ध ने कहा-

“बेटा, जीवन और मृत्यु एक बात नहीं हैं। जीते-जी आदमी तरह-तरह के विचार करता है, लेकिन मरने के बाद परिवार को समाज की विधि माननी ही पड़ती है।”

रामकिसुन की सबसे बड़ी बहन अब तक चुप बैठी थीं। वृद्ध की बात सुनकर उन्होंने कहा- “भैया जीते-जी हम सब से बार-बार कहते थे कि मृत्यु के बाद परिवार को कर्ज में डुबाना मृतक का सम्मान नहीं है। माँ-बाबू की मृत्यु के समय भी उन्होंने भारी कर्मकांड नहीं किया। फिर उनकी अपनी मृत्यु के बाद उसी प्रथा को दोबारा जीवित क्यों किया जाए?”

एक अन्य दियादी ने कहा-

“माँ-बाबू के समय जो हुआ, सो हुआ। उस समय रामकिसुन ने स्वयं निर्णय लिया था। अब वे नहीं हैं। परिवार में उनकी पत्नी और बच्चे हैं। उन्हें इसी समाज में रहना है।”

रामकिसुन की पत्नी दरवाजे के एक कोने में बैठी सबकी बातें सुन रही थीं। उनकी ओर देखते हुए मंगलदेव ने कहा-

"भौजी, आप भी अपनी बात कहिए। यह आपके परिवार का मामला है।"

रामकिसुन की पत्नी कुछ देर चुप रहीं। आँचल से आँसू पोंछते हुए बोलीं-

"मुझे विधि-विधान का अधिक ज्ञान नहीं है। जिस विचार पर वे जीवन भर खड़े रहे, उनकी मृत्यु के बाद मैं उसी विचार को त्याग दूँ, यह मेरा मन नहीं मानता। लेकिन ऐसा भी न हो कि समाज परिवार को अलग कर दे। मैं कर्ज लेकर भोज नहीं करना चाहती और न ही उनके विचारों का अपमान करना चाहती हूँ। अब आप सबको जो उचित लगे।"

मंगलदेव सबकी बातें सुनते हुए चुप बैठे रहे। उन्होंने सोचा कि यहाँ यदि कठोर शब्द बोले गए तो विचार का प्रश्न झगड़े में बदल जाएगा। रामकिसुन ने जीवन भर संघर्ष किया, लेकिन उनके संघर्ष का उद्देश्य समाज को तोड़ना नहीं था। वे समाज के भीतर के सड़े-गले व्यवहारों को बदलना चाहते थे। इसलिए बात भी उसी भाव से रखनी होगी।

मंगलदेव ने कहा-

"भाइयो, पहले एक बात स्पष्ट कर लें। रामकिसुन की मृत्यु के बाद के क्रिया-कर्म को लेकर हार-जीत की कोई लड़ाई नहीं होगी। न परम्परा मानने वालों को शत्रु समझा जाएगा और न परम्परा की अनुचित बातों का विरोध करने वालों को अधर्मी कहा जाएगा। प्रश्न केवल इतना है कि रामकिसुन जीवन भर जिन विचारों पर खड़े रहे, उनका परिवार उन विचारों को माने या उनकी मृत्यु का बहाना बनाकर उन्हें छोड़ दे।"

बीच में कोई कुछ नहीं बोला। मंगलदेव ने आगे कहा- “यदि मृतक का सम्मान केवल नख-बाल कटवाने और बड़ा भोज देने से होता, तो गरीब परिवार के मृतक का कभी सम्मान हो ही नहीं पाता। जिसके पास पैसा है, वह भोज देगा और जिसके पास नहीं है, वह कर्ज लेकर भोज करेगा। उसके बाद परिवार वर्षों तक महाजन का हिसाब चुकाता रहेगा। मृतक एक दिन मरता है, लेकिन ऐसी प्रथा के भार से उसका परिवार रोज-रोज मरता रहता है। जो धर्म शोकाकुल परिवार को सहारा देने के बदले उसे कर्ज और कष्ट में धकेल दे, वह किस अर्थ में धर्म हुआ?”

वृद्ध ने पूछा-

“तो क्या सब कुछ छोड़ दिया जाए?”

मंगलदेव ने उत्तर दिया-

“सब कुछ छोड़ देना या सब कुछ बनाए रखना, प्रश्न को इस तरह दो टुकड़ों में नहीं बाँटा जा सकता। परिवार अपने मृतक को याद करे, प्रेम और श्रद्धा से उसके प्रति सम्मान प्रकट करे तथा समाज के लोग दुख की घड़ी में परिवार के साथ खड़े रहें, यह सब स्वाभाविक रूप से होता ही रहेगा। लेकिन जो कार्य शोकाकुल परिवार को कर्ज में डुबो दे, मृतक की जीवन-दृष्टि और विचारों के विपरीत हो तथा केवल लोक-दिखावे के लिए किया जाए, उसकी आवश्यकता ही क्या है?”

एक व्यक्ति ने पूछा- “भोज नहीं होगा तो दियादी-समाज क्या खाएगा?”

मंगलदेव ने कहा- “रामकिसुन के जीवन में दियादी-समाज ने उनके साथ जितना खाया-पिया, क्या वह कम है? दुख के समय समाज भोजन की आशा में आता है या परिवार का भार कम करने? यदि परिवार का चूल्हा दस दिनों से ठीक से नहीं जला है तो पहले

परिवार के बच्चे खाएँ, यह आवश्यक है या पूरे समाज को भोज कराया जाए?”

जीवनलाल ने कहा-

“भैया ठीक कह रहे हैं। रामकिसुन भैया ने अपने माता-पिता की मृत्यु के समय जिन कर्मकांडों को छोड़ दिया था, अब उनकी मृत्यु पर उन्हें दोबारा आरम्भ करना उचित नहीं होगा। परिवार के लोग एक जगह बैठकर उन्हें याद करेंगे। समाज के लोग भी आएँगे, लेकिन कर्ज लेकर भोज-भात नहीं किया जाएगा।”

बैठक में कुछ देर तक फुसफुसाहट होती रही। कोई कहता कि इससे समाज में नई परम्परा आरम्भ होगी, तो कोई कहता कि पहले भी कई परिवार ऐसा कर चुके हैं। कोई सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाता, तो कोई परिवार की आर्थिक स्थिति पर ध्यान देने की बात करता। अन्ततः सबकी सहमति से यह निर्णय हुआ कि किसी के लिए नख-बाल कटवाने की बाध्यता नहीं रहेगी। जो अपनी श्रद्धा से जैसा करना चाहेगा, वैसा करेगा, लेकिन परिवार पर कोई कर्मकांड नहीं थोपा जाएगा। दसवें दिन परिवार, दियादी और समाज के लोग एक जगह बैठकर रामकिसुन के जीवन और विचारों पर चर्चा करेंगे। भोज के नाम पर बड़ा खर्च नहीं किया जाएगा। घर में जो साधारण भोजन बनेगा, परिवार के लोग वही खाएँगे। बाहर से आने वालों का स्वागत पानी और चाय से किया जाएगा।

निर्णय होने के बाद लोग उठकर जाने लगे। कुछ वृद्धों का मन अभी पूरी तरह सहमत नहीं था, लेकिन परिवार की सहमति देखकर उन्होंने खुलकर विरोध भी नहीं किया। मंगलदेव समझ गए कि सामाजिक परिवर्तन किसी एक बैठक में पूरा नहीं होता। आज लोग चुप हुए हैं, कल मन-ही-मन विचार करेंगे और परसों उन्हीं में से कोई अपने परिवार में भी इसे अपनाएगा। विचार का मार्ग खेत की नाली

की तरह होता है। पहले एक छोटी-सी धार बनती है, फिर बहता हुआ पानी स्वयं उसे चौड़ा करता जाता है।

सबके चले जाने के बाद मंगलदेव ने जीवनलाल और रामकिसुन के परिवार के लोगों को रोक लिया। उन्होंने कहा-

"रामकिसुन मुझे अपने परिवार की देखभाल की जिम्मेदारी देकर गए हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं परिवार का मालिक बन गया हूँ। परिवार का मालिक स्वयं परिवार है। हमें केवल इतना देखना है कि कोई आवश्यक काम बीच में न छूट जाए।"

जीवनलाल ने कहा-

"भैया, खेत-पथार तो हैं, लेकिन खेती सँभालने वाला एक व्यक्ति अचानक नहीं रहा। भैया ने खेती का सारा भार अपने ही कंधों पर उठा रखा था।"

मंगलदेव ने रामकिसुन की पत्नी से पूछा-

"खेतों में अभी कौन-कौन से काम बाकी हैं?"

रामकिसुन की पत्नी ने कहा-

"किस खेत में क्या काम करना है, यह सब वे स्वयं ही समझते थे। सुबह उठकर सभी खेतों को देख आते थे, उसके बाद दिन का काम निर्धारित करते थे। मैं पूछती भी थी तो कहते थे- 'आपके पास घर का काम कम है क्या, जो खेतों का हिसाब भी अपने सिर पर लेंगी?'"

रामकिसुन के बेटे ने धीरे से कहा-

"बाबू ने परसों पंद्रह धुर का चौमास खेत कुदाल से पलटा था। कह रहे थे कि एक दिन धूप लगने के बाद मिट्टी के ढेले तोड़कर खेत समतल कर देंगे। वह काम अभी बाकी है।"

बेटे की ओर देखते हुए मंगलदेव ने पूछा- "तुम खेती का काम

समझते हो?”

बेटे ने कहा-

“थोड़ा-बहुत समझता हूँ। अब स्कूल छोड़कर खेत सँभालूँगा।”

बेटे की बात सुनते ही रामकिसुन की पत्नी बोलीं-

“नहीं, तुम्हारे बाबू कभी ऐसा नहीं कहते कि पढ़ाई छोड़ दो। वे कहते थे कि पढ़ा-लिखा किसान खेत को केवल आँखों से नहीं, अपनी बुद्धि से भी देखता है।”

मंगलदेव का मन भर आया। उन्होंने कहा-

“तुम्हारी माँ ठीक कह रही हैं। तुम खेत भी देखोगे और पढ़ाई भी करोगे। पढ़ाई का अर्थ केवल नौकरी करना नहीं होता। मिट्टी के गुण, बीज की किस्म, पानी की मात्रा, बाजार की चाल और आमदनी-खर्च का हिसाब समझना भी पढ़ाई है। तुम्हारे बाबू मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ सके, लेकिन जीवन भर खेत और समाज की पुस्तक पढ़ते रहे। तुम्हें दोनों पुस्तकें पढ़नी हैं।”

चौथी बेटी माँ के पास बैठी थी। मंगलदेव ने उसकी ओर देखते हुए कहा-

“परिवार के निर्णयों में बेटे और बेटियों की समान भागीदारी रहेगी। विवाहित बेटी परायी नहीं हो जाती। सभी अपनी माँ और छोटे भाई-बहनों के साथ खड़े रहेंगे। लेकिन किसी को अपने घर का काम छोड़कर यहाँ पड़े रहने की आवश्यकता नहीं है। परिवार की सहायता इस तरह करनी है कि उसकी अपनी शक्ति बढ़े।”

मंगलदेव ने जीवनलाल से कहा कि खेतों में जो काम तत्काल आवश्यक हैं, उनकी सूची बनाएँ। सुवंशलाल को जिम्मेदारी दी कि वह युवकों से बात करके दो-चार दिनों के सामूहिक श्रम की व्यवस्था करे। जब तक परिवार अपने काम की नई व्यवस्था नहीं बना लेता, तब तक

खेती को पिछड़ने नहीं देना है। जो कोई सहायता करे, वह इसे दया नहीं, रामकिसुन के साथ निभे सम्बन्ध का दायित्व समझकर करे।

सुवंशलाल अब तक चुपचाप सबकी बातें सुन रहा था। उसने कहा-

“काका, खेतों का काम तो हम सब मिलकर कर देंगे, लेकिन रामकिसुन काका समाज के लिए जो काम करते थे, उसका क्या होगा?”

सुवंश का प्रश्न सुनकर मंगलदेव कुछ देर चुप रहे। उन्हें रामकिसुन के साथ हुई वह बातचीत याद आई, जिसमें दोनों ने कृषि-उत्पादन और गाँव के लघु उद्योगों पर विचार किया था। रामकिसुन को बीजवाले खेत में जमा पानी निकालने की जल्दी थी, इसलिए बात पूरी नहीं हो सकी थी। बाद में एक के बाद एक काम आते गए और वह विचार अधूरा ही रह गया। आज रामकिसुन नहीं थे, लेकिन प्रश्न सामने खड़ा था।

मंगलदेव ने कहा- “सुवंश, समाज का काम किसी एक व्यक्ति का काम नहीं होता। रामकिसुन अगुआ थे, इसलिए उनका नाम अधिक सामने रहता था। लेकिन उनके साथ सैकड़ों लोग थे। यदि एक व्यक्ति के मरते ही काम भी मर जाए तो समझो कि वह काम कभी समाज का था ही नहीं।”

एक युवक ने पूछा- “क्या उनके नाम पर कोई स्मारक बनाया जाए?”

मंगलदेव ने मुस्कराते हुए कहा- “पत्थर का स्मारक बनाने में कोई बुराई नहीं है, लेकिन पहले उनके जीवन और विचारों का जीवित स्मारक बनाओ। रामकिसुन के खेत पीछे छूटे रहें और दरवाजे पर उनकी पत्थर की मूर्ति खड़ी कर दी जाए तो वह मूर्ति स्वयं हमारे व्यवहार पर हँसेगी। उनके नाम की पट्टिका लगा देने से उनकी स्मृति

जीवित नहीं रहेगी। उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि तभी मिलेगी, जब उनका अधूरा काम आगे बढ़ेगा और जिन विचारों के लिए वे जीवन भर खड़े रहे, वे हमारे व्यवहार में उतरेंगे।"

सुवंशलाल ने पूछा- "अधूरे काम कौन-कौन से हैं?"

मंगलदेव ने कहा-

"दो कामों की चर्चा वे बार-बार करते थे। पहला, खेती को पेट भरने का साधन भर न रहने देकर सम्मान के साथ जीने का माध्यम बनाना। दूसरा, गाँव के परम्परागत हस्तशिल्प को जाति के बन्धन से निकालकर नई मशीनों और नए ज्ञान से जोड़ना। खेतों में पैदावार बढ़ भी जाए, लेकिन उपज को सुरक्षित रखने, साफ करने, तेल-दाल-आटा बनाने और बाजार तक पहुँचाने की व्यवस्था न हो तो किसान का लाभ कोई दूसरा ले जाएगा।"

एक युवक ने कहा- "यह सब बहुत बड़े काम हैं, काका। अपने पास इतना पैसा कहाँ है?"

मंगलदेव ने उत्तर दिया- "बड़े काम का अर्थ यह नहीं कि पहले ही दिन बड़ा खर्च किया जाए। पहले अपने साधनों का हिसाब समझो। गाँव में किसके पास कौन-सा औजार है, कौन व्यक्ति कौन-सा काम जानता है, किस खेत में कौन-सा बीज अच्छी उपज देता है, बोरिंग का पानी कितने खेतों तक पहुँच सकता है और किसान अपनी उपज किस मूल्य पर बेचता है, क्या इन सबकी जानकारी किसी एक जगह उपलब्ध है? एक किसान का ज्ञान दूसरे किसान तक नहीं पहुँचता। ज्ञान भी सम्पत्ति है। पहले उसी सम्पत्ति को सबकी साझी सम्पत्ति बनाओ।"

सुवंशलाल ने कहा- "तब हर महीने एक बैठक हो। केवल भाषण की बैठक नहीं, काम की बैठक। एक महीने खेती के प्रश्न पर विचार हो और दूसरे महीने गाँव के किसी व्यवसाय या शिक्षा के प्रश्न

पर।”

मंगलदेव ने कहा- “बैठक तभी उपयोगी होगी, जब अगली बैठक में यह देखा जाए कि पिछले निर्णय पर कितना काम हुआ। कागज पर दस प्रस्ताव लिखकर रख देने से समाज नहीं बदलता। एक काम हाथ में लो और उसे पूरा करो।”

रामकिसुन के बेटे ने बीच में कहा-

“पहला काम बाबू के पंद्रह धुर वाले खेत से आरम्भ करें।”

बेटे की बात सुनकर सबके चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आ गई। मंगलदेव ने कहा-

“ठीक कहा। छोटे खेत का काम छोटा नहीं होता। उसी खेत में रामकिसुन का अधूरा श्रम पड़ा हुआ है। पहले उसे पूरा करो। इसके साथ खेत की आमदनी और खर्च भी लिखो। कौन-सा बीज लगा, कितना श्रम लगा, कितना पानी लगा और अन्त में कितनी उपज हुई, सबका हिसाब रखो। हिसाब रहेगा, तभी समझ सकोगे कि खेती लाभ में है या घाटे में।”

सुवंशलाल ने कहा-

“मैं एक बही लेकर आऊँगा। गाँव का जो किसान चाहे, वह अपने खेत का हिसाब उसमें दर्ज कराता जाए।”

मंगलदेव ने कहा-

“वह बही सुवंश की नहीं, समाज की होगी। लिखने वाला बदल सकता है, लेकिन हिसाब नहीं मिटना चाहिए। गाँव के पढ़े-लिखे लड़के-लड़कियों को इस काम से जोड़ो। वे समझते हैं कि पढ़ाई का अर्थ केवल नौकरी करना है। जब वे अपने खेत का विज्ञान, परिवार की आमदनी और खर्च तथा समाज के व्यवहार को समझेंगे, तब उनके लिए शिक्षा का अर्थ भी व्यापक होगा।”

दसवें दिन रामकिसुन के दरवाजे पर फिर से लोग जुटे। न कोई बड़ा मण्डप बनाया गया, न भोज के लिए चूल्हों की पाँत सजाई गई। आँगन, ओसारे और दरवाजे पर जितनी जगह थी, लोग वहीं बैठ गए। पहली बैठक में विधि-विधान के पक्ष में बोलने वाले वृद्ध भी आए। कुछ लोग मन-ही-मन यह देखना चाहते थे कि परम्परागत भोज के बिना यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है।

पाँचों बहनों ने अपने भाई को याद करते हुए उनके जीवन की अलग-अलग घटनाएँ सुनाईं। जीवनलाल ने परिवार के सुख-दुख में रामकिसुन की भूमिका की चर्चा की। किसी ने भूमि आन्दोलन को याद किया, किसी ने सूदखोरी के विरुद्ध उनके संघर्ष को और किसी ने दुर्गापूजा के समय हुए वैचारिक टकराव को। इसी बीच एक किसान ने बताया कि रामकिसुन अपने खेत से पहले किसी दूसरे के सूखते हुए खेत में बोरिंग का पानी दे देते थे। एक मजदूर ने कहा कि रामकिसुन ने मजदूरी करने वालों को कभी छोटी दृष्टि से नहीं देखा। समाज के अलग-अलग लोगों की बातों से रामकिसुन के व्यक्तित्व के विभिन्न रूप सामने आते गए।

अन्त में मंगलदेव ने कहा-

“रामकिसुन की प्रशंसा करने से अधिक आवश्यक है कि उनके जीवन से अपने काम के लिए कोई एक सूत्र ग्रहण किया जाए। मैं यह नहीं कहता कि वे पूर्ण थे। कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं होता। उनसे भी भूलें हुई होंगी और उनके विचारों में भी कमियाँ रही होंगी। लेकिन उन्होंने अपने समय के प्रश्नों से मुँह नहीं मोड़ा। जिस बात को सही समझा, उसके लिए खड़े रहे। आज हमारी श्रद्धा तभी सार्थक होगी, जब हम अपने समय के प्रश्नों को पहचानकर उनके समाधान के लिए खड़े होंगे।”

सुवंशलाल ने युवकों के विचार बैठक में रखे। प्रत्येक महीने

समाज के कामों की बैठक होगी। पहला काम रामकिसुन के परिवार की पिछड़ गई खेती को सँभालना और उसके साथ खेत की आमदनी तथा खर्च का हिसाब रखना होगा। दूसरा काम गाँव के किसानों के बीच बीज, पानी, औजार और अनुभव से सम्बन्धित जानकारियों का आदान-प्रदान करना होगा। उसके बाद गाँव की उपज से जुड़े लघु उद्योगों की सम्भावनाएँ देखी जाएँगी। कोई काम जाति के नाम पर बँधा नहीं रहेगा। जो सीखना चाहेगा, वह सीखेगा और जो सिखा सकेगा, वह सिखाएगा।

बैठक समाप्त होने के बाद लोग अपने-अपने घरों की ओर बढ़े। बाहर से आए लोगों को पानी और चाय दी गई। बड़ा भोज नहीं हुआ, फिर भी किसी को यह नहीं लगा कि रामकिसुन का अपमान हुआ है। पहली बैठक में परम्परा के पक्ष में बोलने वाले एक वृद्ध ने जाते समय जीवनलाल से कहा- “काम बुरा नहीं हुआ। किसी व्यक्ति को याद करना भोज देने से अधिक आवश्यक है। लेकिन समाज को धीरे-धीरे समझाते रहना।”

यह बात सुनकर मंगलदेव ने मन-ही-मन सन्तोष अनुभव किया। जो बात पहले विरोध के रूप में उठी थी, वह अब विचार के मार्ग पर आगे बढ़ने लगी थी।

अगले दिन भोर में सुवंशलाल पाँच-सात युवकों के साथ रामकिसुन के पंद्रह धुर वाले खेत पर पहुँचा। रामकिसुन का बेटा कुदाल लिए पहले से वहाँ खड़ा था। एक दिन की धूप लगने से मिट्टी काम करने लायक नमी पर आ गई थी। रामकिसुन ने जिन ढेलों को तोड़ने की बात सोची थी, वे अब भी वैसे ही पड़े थे।

मंगलदेव धीरे-धीरे खेत की मेड़ पर पहुँचे। सुवंशलाल ने पूछा-

“काका, किस ओर से आरम्भ करें?”

मंगलदेव ने थोड़ी-सी मिट्टी उठाकर हाथ में मलते हुए कहा-

"रामकिसुन जहाँ छोड़ गए हैं, वहीं से आगे बढ़ाओ।"

कुदाल की पहली चोट मिट्टी के एक बड़े ढेले पर पड़ी। ढेला टूटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर गया। एक-एक कर सभी युवक काम में लग गए। रामकिसुन का बेटा भी उनके साथ कुदाल चलाने लगा। मंगलदेव खेत की मेड़ पर खड़े सब कुछ देखते रहे। उनकी आँखों में आँसू भर आए, लेकिन वे असहाय दुख के आँसू नहीं थे। उनमें जीवन भर के साथी से बिछुड़ने की पीड़ा थी और उसके अधूरे काम को आगे बढ़ते देखने का सन्तोष भी।

पूरब की ओर से सूर्य की किरणें खेत पर फैल गईं। नई पलटी मिट्टी से सोंधी गन्ध उठने लगी। मंगलदेव को अनुभव हुआ कि रामकिसुन की देह की यात्रा समाप्त हो चुकी है, लेकिन उनके श्रम, विचार और सामाजिक सम्बन्धों की यात्रा अब भी जारी है। टूटते हुए ढेलों के भीतर से निकलती नई मिट्टी की तरह उनका काम और विचार नया रूप लेकर आगे बढ़ रहे थे। ❑❑❑

Notes